GOVERNMENT OF INDIA
NATIONAL LIBRARY, CALCUTTA.

Class No. 181 : Sb.

Book No. 93.1 (6) VOL. 6.

N. L. 38.

MGIP Santh.—S1—30 LNL/58—9-4-59—50,000.

1905
Jan - Dec.

SHELF LISTED

सरस्वती

सचित्र मासिकपत्रिका।

—

भाग ६

—

सम्पादक

पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी।

—

१९०५

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद।

SHELF LISTED
NATIONAL LIBRARY
No 6851
Date 28.11.57
CALCUTTA

सूचीपत्र।

☞ जिन लेखों के पहले * ऐसे चिन्ह हैं वे सचित्र हैं।

नम्बर	लेख	लेखक	पृष्ठ
	१—आध्यात्मिक विषय।		
१	आत्मा के अमरत्व का वैज्ञानिक प्रमाण ...	सम्पादक	२३६
२	*कुण्डलिनी	,, ...	९७
३	प्रपञ्च	गवीश	३५१
४	पुनर्जन्म का प्रत्यक्ष प्रमाण	सम्पादक	४२१
५	सृष्टि-विचार	,, ...	१७१
	२—आख्यायिका।		
१	एक शिकारी की सच्ची कहानी ..	श्रीयुक्त निज़ामशाह	२९९
२	नरक-गुलज़ार	लाला पार्वती नन्दन	३३८
३	पत्नीव्रत	भट्टाचार्य्य	४१९
४	बिजुली	लाला पार्वतीनन्दन	२३
५	महाराज सूरजसिंह और बादलसिंह की लड़ाई	पण्डित बदरीदत्त-पांडे	१४५
६	मेरी चम्पा	लाला पार्वतीनन्दन	१३२
७	मैं तुम्हारा कौन हूं ?	,, ...	२६०
८	राज-टीका	,, ...	४७८
९	सम्पादक	,, ...	१६७
१०	*हंस-सन्देश	सम्पादक	२१२
	३—ऐतिहासिक विषय।		
१	कलकत्ते की काल कोठरी	सम्पादक ...	३०,६९
२	जहांगीर के आत्मचरित का एक नमूना ...	,, ...	३९८
३	*जापान-सागर के विजयीवीर ...	,, ...	३४५

सूची।

नम्बर	लेख	लेखक	पृष्ठ
४	राजा युधिष्ठिर का काल ...	... पण्डित गणपति जानकीराम दुबे, बी० ए०	७७
५	राजायुधिष्ठिर का समय ...	... पण्डित गिरिजाप्रसाद द्विवेदी ..	१४६
६	,, ,, ,,	,, सम्पादक	२१८
७	लोमहर्षण शारीरिक दण्ड ...	,, ...	३१८
८	वाल्मीकि-रामायण और बौद्धमत	... ,, ...	४०५

कविता।

१	अन्योक्ति-सप्तक ...	... पण्डित श्यामनाथ शर्म्मा ...	१७०
२	ईश-वन्दना ...	.. पण्डित गङ्गाप्रसाद अग्निहोत्री ...	१३
३	कलङ्की को पेडूल ...	... पण्डित गिरिधर शर्म्मा	४६०
४	*कुमुदसुन्दरी ...	... सम्पादक	२१९
५	क्रोधाष्टक ...	... बाबू मैथिलीशरण गुप्त	४१७
६	ग्रन्थकारों से विनय ...	... सम्पादक	५३
७	ग्रीष्म ...	... पण्डित सनातन शर्म्मा सकलानी ...	२१०
८	द्वारका-वर्णन ...	... श्रीमन्त प्रिंस बलवन्तराव सेंधिया ...	५४
९	निद्रा ...	... पण्डित सनातन शर्म्मा सकलानी ...	२५७
१०	नौकरों पर सख़्ती करने का परिणाम	... सैयद अलताफहुसेन हाली) ...	३७६
११	प्रभात-प्रभा ...	... पण्डित सत्यशरण रतूड़ी ...	३३५
१२	पावस-राज ...	.. पण्डित सनातन शर्म्मा सकलानी ...	२२७
१३	पुनः करो उद्योग ...	.. पण्डित गोविन्दशरण त्रिपाठी ...	२११
१४	प्रेम-पताका ...	... पण्डित सत्यशरण रतूड़ी ...	२९८
१५	महाकवि भारवि का शरद्वर्णन	... पण्डित गिरिधर शर्म्मा ...	३७३
१६	*महाश्वेता ...	... सम्पादक	२३७
१७	मित्रता ...	... पण्डित कालीशङ्कर व्यास ...	९३
१८	मित्र-पञ्चक ...	... सेठ कन्हैयालाल पोद्दार ...	१७०
१९	मेरा चम्पा ...	... पण्डित सनातन शर्म्मा सकलानी ...	२५९
२०	*रम्भा ...	... सम्पादक	९२
२१	रसाल-पञ्चक ...	... पण्डित जनार्दन झा	१२९
२२	लार्ड अलिन-कुमारी ...	... पण्डित सनातन शर्म्मा सकलानी ...	४५९
२३	वसन्त ...	... पण्डित श्रीधर पाठक	९१
२४	,, ...	... पण्डित सत्यनारायण	१३०
२५	वसन्तराज ...	... पण्डित सनातन शर्म्मा सकलानी ...	१२८
२६	विचारक्षीण प्राणी ...	... बाबू कृष्णाजी सहाय	२३१
२७	शरत्स्वागत ...	... पण्डित सत्यशरण रतूड़ी ...	४१७
२८	शिक्षा-शतक ...	... पण्डित जनार्दन झा	१४,५१

नम्बर	लेख		लेखक		पृष्ठ
२९	शिशिर-पथिक	... ...	पण्डित रामचन्द्र शुक्ल ...	...	८८
३०	सभ्यता	... ..	पण्डित सत्यशरण रतूड़ी	...	९३
३१	सरस्वती-अष्टक	... ...	पण्डित सनातन शर्म्मा सक..नी	...	९१
३२	स्वदेश-प्रीति	... ...	पण्डित चण्डिका प्रसाद अवस्थी	...	३७५
३३	हेसान्योक्तियां	... ...	पण्डित श्यामनाथ शर्म्मा	...	३३६
३४	हे भारत	... ...	बाबू रामरणविजयसिंह	...	४१८
३५	हेमन्त	... ..	बाबू मैथिलीशरण गुप्त	...	१५

५—जीवन-चरित ।

१	*कविवर लछीराम	... ...	सम्पादक	... ...	१५४
२	*कुमारी तरुदत्त	... ...	पण्डित उमाशङ्कर द्विवेदी	...	१९१
३	गुरु तेग़बहादुरसिंह	... ...	बाबू वेणीप्रसाद	... ...	१२३
४	*जापान की महारानी हरो-को	...	श्रीयुक्त शिवप्रसाद दलपतराम पण्डित		२६३
५	*जोधाबाई	... ...	वङ्ग-महिला	... ...	३३१
६	*डाक्टर ग्रियर्सन	... ...	बाबू काशीप्रसाद	... ...	४४
७	*पण्डित बलदेवप्रसाद मिश्र ...	...	सम्पादक	... ...	४३४
८	पण्डित मथुराप्रसाद मिश्र	... ...	,,	... ...	२४६
९	*प्रसिद्ध मूर्तिकार म्हातरे	... ...	,,	... ...	२०६
१०	*बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री	... ...	चौधरी पुरुषोत्तम प्रसाद शर्म्मा	...	८३
११	महा-कवि माघ	... ...	सेठ कन्हैयालाल पोद्दार	...	१८७
१२	*महाराज रघुराजसिंहजू देव	...	बाबू जीतनसिंह	... ...	२
१३	*राजा रामपालसिंह सी० आई० ई०	...	राजा पृथ्वीपालसिंह	... ...	१६३
१४	*लार्ड कर्जन-लार्ड-मिंटो	... ...	सम्पादक	... ...	३७०
१५	*श्री-आत्मानन्द स्वयंप्रकाश सरस्वती	..	राय देवीप्रसाद बी० ए०, बी० एल.	..	४१२
१६	*श्रीयुक्त सत्यव्रत सामश्रमी	.	बाबू जगन्नाथप्रसाद वर्म्मा		४५४
१७	*सवाई जयसिंह	... ...	सम्पादक	... ...	१९५

६—देश, नगर, स्थल, जात्यादि-वर्णन ।

१	*ओङ्कार-मान्धाता	... ...	सम्पादक	... ...	२९
२	*नैपाल	... ...	,,	... ...	२६४
३	फीजी द्वीप के असभ्य निवासी	...	बाबू कृपाशङ्कर निगम, बी० ए०	...	२७६
४	*बनारस	... ...	सम्पादक	... ...	४५१
५	*मक्का-तीर्थ	... ...	लाला पार्वतीनन्दन	... ...	४४२
६	*मलाबार	... ...	सम्पादक	... ...	९३

नम्बर	लेख	लेखक	पृष्ठ

७—फुटकर विषय।

१	अनुमोदन का अन्त	सम्पादक	५७
२	आख्यायिका	"	२४१
३	*कांग्रेस के कर्ता	"	१६
४	क्रोध	"	२६१
५	जापान की जीत का कारण	"	३२१
६	*जापान की स्त्रियां	"	२१
७	जापान में स्त्री-शिक्षा	"	१०३
८	*जालन्धर का कन्या-महाविद्यालय ...	"	१४२
९	*बंबई की प्रदर्शिनी	पण्डित माधवराव सप्रे, बी० ए० ...	६५
१०	भारत महिला-परिषद	सौभाग्यवती रामदुलारी दुबे ...	६०
११	मनोरञ्जक श्लोक	सम्पादक ...	४०,२००
१२	"	पाण्डेय लोचनप्रसाद	२४४
१३	" (जरामहात्म्य) ...	पण्डित पद्मसिंह शर्म्मा ...	३६६
१४	मैं कैसे डाकृर हो गया?	सम्पादक	१०५
१५	विविध-विषय †	सम्पादक	१,४१,८१,१२१,१६६,२०१,२४५, २८५, ३२७, ३६७, ४०९, ४४९
१६	*सबसे बड़ा हीरा	सम्पादक	३८९
१७	सम्मिलित-हिन्दू-कुटुम्ब-प्रथा के दूषण ...	पण्डित श्यामविहारी मिश्र, एम० ए० और पण्डित शुकदेव विहारी मिश्र, बी० ए०	४८६
१८	स्वाधीनता की भूमिका	सम्पादक	३०२

८—विचित्र-विषय।

१	अन्तःसाक्षित्व विद्या	सम्पादक	१५५
२	*आकाश में निराधार स्थिति ...	"	३८२
३	*कस्तूरी मृग	"	१८०
४	*पत्थर का एक अद्भुत गोला ...	पण्डित देवीप्रसाद शुक्ल, बी० ए० ...	३४६
५	*विस्यूवियस	सम्पादक	१९
६	*सप्त-इचर्य (मिश्र के पिरामिड) ...	पण्डित गिरिजादत्त वाजपेयी, एम० ए०	१०९
७	*हवाई कोठरी	पण्डित मधुमङ्गल मिश्र, बी ए० ...	३५३
८	*हिम-स्फटिक	पण्डित सरयूनारायण त्रिपाठी, एम० ए०	३४८

† विविध विषयों में अनेक विषय सचित्र हैं।

नम्बर	लेख	लेखक	पृष्ठ

९—वैज्ञानिक विषय।

१	*आकाश-मण्डल	बाबू जीतनसिंह	१८६
२	*आँख	पण्डित चन्द्रधर गुलेरी, बी ए० ३६, ७८, ११५, १९६, २४२, ३२४, ३५६,	
३	*क्या चिड़ियां भी सूँघती हैं? ...	सम्पादक	१४१
४	*तार-द्वारा ख़बर भेजने का यन्त्र ...	,, ...	९५
५	पौधों की नींद	पण्डित सूर्य्यनारायण दीक्षित, बी० ए०	२६१
६	पौधों में रस-प्रवाह	,, ...	१०६
७	फोटोग्राफ़ी के उपयोग	सौभाग्यवती रामदुलारी दुबे ...	२७३
८	*भूकम्प	बाबू मालिक्यचन्द्र जैन ...	२२७
९	*मार्तण्ड-महिमा	सम्पादक	३७७
१०	वानस्पतिक सज्ञानता	पण्डित सूर्य्यनारायण दीक्षित, बी ए०	४००
११	*व्योम-विहरण	सम्पादक	३१५, ३४०

१०—साहित्य-विषय।

१	कालिदास की वैवाहिक कविता ...	सम्पादक	२२३
२	कैथी (उत्तर)	,, ...	४३५
३	,, (प्रतिवाद)	रेवरंड एड्विन ग्रीव्स	४३९
४	"ज़माना" और देवनागरी लिपि ...	सम्पादक	४०३
५	देवनागरी लिपि का उत्पत्ति-काल ...	,, ...	३९२
६	देशव्यापक लिपि	,, ...	३०९
७	पुस्तक-परीक्षा	,, ३८, ८०, ११९, १९८, २३९, २८० ३६२, ४०५, ४९९	
८	पूर्वी हिन्दी	,, ...	१८२
९	पूर्वी हिन्दी का एक और नमूना	,, ...	२७२
१०	भाषा और व्याकरण	,, ...	४२४
११	स्कूली किताबें	,, ...	१००

सरस्वती

महाराजा रघुराजसिंहजू देव, जी. सी. एस. आई

181. S6. 93. 1 (6)

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग ६] जनवरी, १९०५ [संख्या १

विविध विषय।

डाकृर पी० सी० राय कलकत्ते के प्रेसीडेन्सी कालेज में रसायन शास्त्र के अध्यापक हैं। अध्यापक वसु की तरह उन्होंने भी बड़ा नाम पाया है। उन्होंने "भारतवर्ष के रसायन शास्त्र का इतिहास" लिखा है। इस पुस्तक के देखकर गवर्नमेण्ट और रसायन विद्या के पारगामी पण्डितों की दृष्टि में अध्यापक राय विशेष प्रतिष्ठा की वस्तु हो गये हैं। गवर्नमेण्ट ने उनको, अब, अपने ख़र्च से योरप भेजा है। वहां पर वे इङ्गलैण्ड को सर्व-प्रधान रासायनिक शाला में नाना प्रकार की परीक्षायें और आइलेषण विश्लेषण करेंगे। प्रसिद्ध प्रसिद्ध रासायनिक पण्डितों से वे वार्तालाप भी करेंगे; और, जिन नई नई बातों का उन्होंने पता लगाया है, उन पर निबन्ध भी वे वहां पढ़ेंगे। इङ्गलैण्ड में अपना कर्त्तव्य पूरा करके अध्यापक राय जर्मनी और आस्ट्रिया के भी रसायनागार देखेंगे। तब वे इस देश को लौट आवेंगे। और लौटकर वे प्रेसीडेंसी कालेज की रसायनशाला की उन्नति करेंगे और यहां के स्कूलों और कालेजों के लिए रसायन-विद्या पर एक छोटी सी पुस्तक लिखेंगे। अध्यापक राय की इस विद्वत्ता और उनके इस सत्कार और सम्मान पर केवल वङ्गवासीही नहीं, किन्तु, समग्र भारतवासियों को प्रसन्न होना चाहिए।

* * *

पानीपत के मौलवी सैयद अल्ताफ़ हुसेन (हाली) की रुबाइयों का अँगरेज़ी भाषा ने बड़ा आदर किया है। जी० ई० वार्ड, एम० ए०, बी० सी० एस०, ने उनको रोमन में प्रकाशित किया है और साथ ही उनका अँगरेज़ी अनुवाद भी दिया है। हाली साहब की यह कविता उर्दू में है और बहुत अच्छी है। अँगरेज़, और उर्दू न जाननेवाले हिन्दुस्तानी भी, अब इस कविता का आनन्द प्राप्त कर सकेंगे। हाली साहब के पिता, जब हाली साहब लड़के थे, तभी मर गये थे। देहली में उनके भाई ने उन्हें शिक्षा दी। बड़े होने पर लाहौर में उनको एक नौकरी मिली। इससे वे वहां चले गये। वहां बहुत दिनों तक वे रहे। जिस समय उनकी उम्र कोई

४० वर्ष की थी वे सर सैयद ग्रहमद के अनुयायी हुए। तब से उन्होंने, समय समय पर, सामाजिक सुधार पर, बहुत सी कवितायें लिखीं। उनकी कविता ग्रैार विद्वत्ता से प्रसन्न होकर गवर्नमेण्ट ने, गये वर्ष, उनको "शम्सुल् उल्मा" की पदवी से विभूषित किया है।

* *
*

पण्डित श्रीधरजी पाठक, कुछ समय हुआ, काश्मीर गये थे। कवि स्वभाव ही से प्राकृतिक दृश्यों को देखने के लोलुप होते हैं। परन्तु यह बात श्रीधर जी में बहुत ही विशेषता से पाई जाती है। चिरकाल तक शिमला-शैल ग्रैार नैनीताल में रह कर भी लवली-लता, शिखर-श्रेणी ग्रैार हरित-वसन्त-पूर्ण शैलतटी की सुषमा लूटने ग्राप काश्मीर गये। काश्मीर की महिमा ग्रापने इस प्रकार बतलाई है—

"यही स्वर्ग सुरलोक, यही सुरकानन सुन्दर
यहिँ ग्रमरन कैा ग्रोक, यहीं कहुं बसत पुरन्दर"

ऐसे ही मनोहर पद्यों में ग्रापने "काश्मीरसुखमा" नाम की एक छोटी सी कविता लिखकर प्रकाशित की है। काश्मीर को देखकर ग्रापके मनमें जो जो भावनायें हुई हैं उनको उसमें ग्रापने ग्रपनी मधुमयी कविता में वर्णन किया है। पुस्तक के ग्रन्त में, ग्रापकी "शिमलाप्रेक्षणम्" नाम की एक छोटी सी संस्कृत-कविता भी है। हम कहते हैं कि—

"ताहि रसिक वर सुजन ग्रवसि ग्रवलोकन कीजै
मम समान मन-मुग्ध ललकि लोचन-फल लीजै"

महाराजा रघुराजसिंह जू देव, जी० सी० एस० ग्राई०।

सरस्वती में भारतवर्षीय तथा विदेशीय विद्वद्वरों ग्रैार महानुभावों के जीवन-चरित, समय समय पर, ग्रक्सर प्रकाशित हुग्रा करते हैं। गत वर्ष, इसकी ग्राठवीं संख्या में, मान्य-वर महाराजा सवाई रामसिंह जी का जीवन-चरित प्रकाशित हुग्रा है। ग्रतः ग्राज मैं भी पाठकों को उक्त महाराज के सामयिक, वैकुण्ठवासी, बांधवाधिपति श्रीमहाराजा रघुराजसिंह जू देव, जी० सी० एस० ग्राई०, का संक्षिप्त जीवन-चरित भेंट करता हूं। ग्राशा है कि ऐसे कवि-चूड़ामणि महाराज की जीवनी पाठकों को मनोरञ्जक होगी। इस लेख में महाराज को जीवनसम्बन्धिनी बड़ी बड़ी घटनाग्रों का उल्लेख न कर विशेष करके इस विषय की ग्रालोचना की जायगी कि श्रीमान् का भारतवर्षीय भाषा ग्रैार संस्कृत कवियों में कैान सा स्थान है।

२। ये महाराज, तथा इनके पूर्वज, ग्रग्निवंशान्तर्गत शुद्ध सोलंकी वंश के थे। इनके पूर्वज गुजरात देशान्तर्गत बघेला नामक ग्राम से ग्राये थे। इस कारण इनका वंश यहां पर बघेलवंश* के नाम से प्रसिद्ध हुग्रा। इस प्रान्त में सबसे प्रथम श्रीवीरध्वज महाराज के पुत्र श्रीव्याघ्रदेव महाराज, लगभग १४०० वर्ष हुए, ग्राये ग्रैार कुछ काल तक युद्ध करके उन्होंने बान्धवगढ़ ग्रैार उसके ग्रास-पास की भूमि को जीता। ऐसा कहा जाता है कि पहले इस देश की सीमा उत्तर में प्रयाग, बांदा ग्रैार रायबरेली तक; पूर्व में मिरज़ापुर ग्रैार छोटा नागपुर तक; दक्षिण में ग्रमरकण्टक के ग्रागे बिलासपुर तक; तथा पश्चिम में कालिञ्जर ग्रैार कालपी तक थी। सई नदी के तट पर स्थित एक ग्राम का दान-पत्र यहां के किसी महाराज की ग्रोर से उसी ग्राम के रहनेवाले एक ब्राह्मण के यहां पाया गया है। व्याघ्रदेव से ले कर हमारे चरितनायक के सुयोग्य पिता महाराज विश्वनाथसिंह जू देव तक जितने महाराज क्रमशः इस राज्य के सिंहासन पर ग्रारूढ़ हुए हैं, उनकी नामावली श्रीमान् ने ग्रपने ग्रन्थ ग्रानन्दाम्बुनिधि के प्रथम स्कन्ध के प्रथम तरङ्ग में यों ग्रङ्कित की है—

---

* इस देश में व्याघ्रदेव जी प्रथम ग्राये। ग्रतः कोई कोई उन्हीं के नाम पर इस वंश का नाम पड़ना बतलाते हैं।

कवित्त

वीरध्वज, व्याघ्रदेव, करन, सोहागदेव,
संग रामसिंह, औ बिलासदेव, जानिये।
भीमल, अनीकदेव, बलदेव, दलकेन्द्र,
मलकेश, बुल्लार, व बरियार भानिये।
सिंहदेव, भैरोंदेव, नरहरि, भयद्देव,
त्यों शालिवाहन, वीरसिंह देव गानिये।
वीरभान, रामसिंह, वीरभद्र, विक्रम जू,
अमर, अनूप, भावसिंह को बखानिये॥

दोहा

भावसिंह महराज के, अनिरुधसिंह सुजान;
श्रीअनिरुध महाराजके, श्रीअवधूत महान।
महाराज अवधूत के, श्रीअजीत बलवान;
श्रीअजीत महराजके श्रीजैसिंह सुजान।
फहराते जेहि धर्म के अवलों ध्वजा महान;
जेहि गमनत गोविन्दपुर गंग लियो अगुवान।
महाराज जयसिंह के धर्म ज्ञान यश धाम;
महाराज नृप मुकुटमणि विश्वनाथ प्रदकाम।

३। महाराज विश्वनाथसिंह जू देव की सहधर्म्मिणी श्रीमती परिहारिन मा साहिबा से, जो कि महाराज नागौद की पुत्री थीं, आपका जन्म श्री विक्रमीय सम्वत् १८८० में हुआ था। बाल्यावस्था ही से श्रीमान् के विद्योपार्जनार्थ, पिता की ओर से, विशेष चिन्तना की गई थी। इससे आपने किशोरावस्था ही में संस्कृतविद्या में बहुत कुछ दक्षता प्राप्त करली थी। काव्यरचना में तो इनको शक्ति स्वाभाविक थी और ऐसा होता भी है। क्योंकि कहा गया है कि काव्यरचना की शक्ति बहुधा विद्योपार्जन से नहीं होती। किन्तु यह किसी नैसर्गिक शक्ति का प्रभाव है, जो विरलेही भाग्यवान पुरुषों को प्राप्त होती है। प्रथम ही प्रथम बहुत ही किशोरावस्था में, श्रीमान् ने विनयमाल नामक ग्रन्थ की रचना की थी। २७ वर्ष की अवस्था में आपने रुक्मिणीपरिणय नामक ग्रन्थ रचा। यह ग्रन्थ नाना प्रकार के छन्द, अलङ्कार और शान्त, शृङ्गार, वीर, रौद्र आदि रसों से परिपूर्ण है।

४। श्रीमान् ने छोटे बड़े अष्टकों और स्फुट कविताओं के सिवा निम्नलिखित ग्रन्थ निर्म्माण किये हैं—(१) विनयमाल, (२) रुक्मिणीपरिणय, (३) आनन्दाम्बुनिधि, (४) रामरसिकावली, (५) भक्तिविलास, (६) सुन्दरशतक, (७) गङ्गाशतक, (८) जगदीशशतक, (९) मृगयाशतक, (१०) चित्रकूटमाहात्म्य, (११) रामस्वयम्बर, (१२) पदावली, (१३) रघुराजविलास, (१४) विनयपत्रिका, (१५) विनयप्रकाश। न तो मुझे इन सब ग्रन्थों के देखने ही का गौरव प्राप्त है, और न सरस्वती में इतना स्थान ही है, कि सब ग्रन्थों की समालोचना पूरी तौर पर की जाय। इससे केवल दोही एक ग्रन्थों की अति संक्षिप्त आलोचना यहां पर की जाती है। इससे पाठकों को मालूम हो जायगा कि महाराज में काव्यशक्ति कैसी प्रबल थी, और इनकी कविता कैसी सरस और मधुर होती थी।

५। रुक्मिणीपरिणय। इस ग्रन्थ को श्रीमान् ने सम्वत् १९०७ में निर्म्माण किया था। इसके पहले शायद श्रीमान् ने एक ही दो काव्य के ग्रन्थ बनाये थे। परन्तु, तिस पर भी, इसकी मनोमोहिनी कविता मन को मुग्ध कर लेती है। शृङ्गार रसही इस ग्रन्थ में प्रधान नहीं है, यथास्थान वीर, शान्त और रौद्र आदि रसों से भी यह ऐसी परिप्लुत है, कि पढ़नेवालों को, इसके पद पद का आस्वादन करके, महा आनन्द होता है। उदाहरणार्थ केवल दो पद्य यहां पर उद्धृत किये जाते हैं—

सवैया

बरखा अरु शीतहु आतप को,
निसि द्यौस सहैं सरही में खरे।
कहुं सूखिहु जात, कहूं हरियात,
रहैं जलजात यों ध्यान धरे।
रघुराज सुनो तप के बल यद्यपि,
रावरे के गल माहिँ परे।
तबहूं न लहैं सरि रुक्मिणि के पद
की मधु व्याजहि आशु भरे॥ १॥

कवित्त

महा महा महि के महोपन के मध्य ह्वै के,
मरदि मतंगन को मण्डल महान है।
भेदि भेदि भारी भारी भीम भीम भटन को,
भानही सो भयो भल भूमि भासमान है।
स्यन्दन यदुनन्दन को भूपनन्दिनी को प्रति,
करत अनन्द आय ढिग दरसान है।
भाषै रघुराज यदुराज रुक्मिणी के नैन,
लागे तजि लाज नेह सरस्यो समान है॥२॥

६। आनन्दाम्बुनिधि। संवत् १९११ में श्रीमान् ने श्रीमद्भागवत के बारहों स्कन्धों का अनेक प्रकार के मनोहर छन्दों में अनुवाद करके उसका नाम आनन्दाम्बुनिधि रक्खा। इसके कहने की कुछ आवश्यकता नहीं कि श्रीमद्भागवत व्यासदेव के और पुराणों की अपेक्षा कैसा क्लिष्ट ग्रन्थ है। यदि क्लिष्टता का विचार न किया जाय तो संस्कृत में यह काव्य और साहित्य की भी एक अद्वितीय पुस्तक है। श्रीमान् ने इसका पद्यात्मक अनुवाद सराहनीय किया है। भागवत के प्रति श्लोकों को पढ़ते जाइये, और उसीके अनुसार, तथा उसी भाव के, हिन्दी पद्य उससे मिलाते जाइए। इस ग्रन्थ में ग्रन्थकर्त्ता की वाक्पटुता, सरसता, लालित्य और भावगाम्भीर्य जगह जगह पर झलकती है। ज्यों ज्यों पाठकवृन्द इस आनन्दाम्बुनिधि के स्कन्धरूपी तरल तरङ्गों के ज्ञान प्रवाह में मनमञ्जों को प्रवेपित करते जाते हैं, त्यों त्यों इस सुधासिन्धु में नाना प्रकार के छन्द-मुक्ताओं की माला, उनके हृदयकमल के विमल विचारों को अलङ्कृत और भूषित करती जाती है। इस ग्रन्थ में, श्रीमद्भागवत को छोड़ अन्यान्य पुराणों से भी बहुत से सामयिक प्रसङ्ग श्रीमान् ने आवश्यकीय स्थानों पर रख दिये हैं। यदि इस वृहद्ग्रन्थ के प्रत्येक स्कन्ध से उदाहरण लेकर आलोचना की जाय, तो वह स्वयं एक बड़ा ग्रन्थ हो जायगा। इससे पाठकों के अवलोकनार्थ केवल एकही स्थान के कतिपय छन्द देकर, मुझे सन्तोष करना पड़ता है। निम्नलिखित कथा पञ्चम स्कन्ध के द्वितीय तरङ्ग से उद्धृत की जाती है। जहां पर अग्नीध्र महाराज और पूर्वचिती अप्सरा का वन में साक्षात् हुआ है वहां का वर्णन—

दोहा

तेहि आश्रम के निकट में, उपवन अति कमनीय।
तहँ सुन्दरि विचरन लगी, करि करि गति कमनीय॥

चैापाई

सघन विटप जहँ बहुत सोहाहीं।
तिन महँ ललित लता लहराहीं॥
शुक कपोत चातक अरु मोरा।
विपुल बिहङ्ग करहिं कलशोरा॥
लसहिं मनोहर विविध तड़ागा।
विकसित वारिज उड़त परागा॥
चक्रवाक वक सारस. हंसा।
करहिं शोर चहुँदिस दुख ध्वंसा॥
मरकतमणि सम निर्मल नीरा।
बहत सुहावन त्रिविध समीरा॥
पूर्वचिती अपसर छवि पागी।
ऐसे वन महँ विचरन लागी॥
तासु ललित जुग चरण बिलासू।
काके उर नहिं करत हुलासू॥
ललित चरण नूपुर झनकारी।
छाइ रही वन महँ मनहारी॥

दोहा

हुतो समाध अगाध गहि, सो नरदेवकुमार।
ताके कानन में परो, मनहुँ सुधा को धार॥
कनक कलश सम कपत महि, युग उरोजयुत हार।
लफि लफि लचकत लङ्क लघु, लहिलहि कुचकचभार॥
ताहि निरखि अग्नीध्र नृप, कामविवश ह्वै आशु।
बोल्यो मञ्जुल वचन अति, जड़सम चलि ढिग तासु॥

सवैया

कैानि हैा, कैान की बेटी अहैा,
केहि हेत फिरैा वन में मनहारी।
आई इतै रघुराज कहै,
किधैां ईश की माया तिया तनधारी।

जौन के हेतु, बिना गुण के,
　　युग चाप गहे, शर पै न पँवारी।
मो से कुरङ्गन कामिन के हिय,
　　मोहन को जिय माझ बिचारी॥

दोहा

बिन गाँसी के बाण ये, केहि हनिहहु सुकुमारि।
अति तीक्षण लखि कँपत हिय, रक्षा करहु हमारि॥
तव वेनी विगलित कुसुम, लपटि सुखित भल भौंर।
करत गान तेरो सुयश, सुकवि सरिस चहुँ ओर॥

सवैया

पद पङ्कज पञ्जुर में ललना,
　　यह तीतुरी नूपुर शोर करै।
मम कानन धार सुधा सी ढरै,
　　नहिं नैनन में कछु मोद ठरै।
वन में बसि कै तरु को त्वच त्यागि,
　　कदम्ब प्रभा पट काहे धरै।
येहि हेतु कसी कल किङ्किनि तूं,
　　कटि मेरी कहूं नहिं टूटि परै॥

केसरि के रँग सों रँगि कै,
　　युग शैल धरे तुम काह विचारी।
यद्यपि ताकी सुवास ते वासित,
　　वेस करो कुटि टूटी हमारी।
ये उपजै अतिशै उर पीर,
　　कहा कहिये कहिजात न प्यारी।
भूधर भारहिं भूरि लहे,
　　करकैगी लली कटि खीन तिहारी॥

दोहा

कामिन की करनी क़तल, मुख पियूखरस धारि।
अपनो देश बताउ बलि, जहँ उपजै अस नारि॥
कैसो वह थल जहँ हरी, तिय प्रभाव अस देहिं।
धरि अनुपम युग कुम्भ उर, बरबस बल करि लेहिं॥
नैन मीन अलकैं अली, कुण्डल मकर अदाग।
सुभगदन्त तुव मुख लसत, मानहुँ सुधा तड़ाग॥
प्यारी पङ्कज पाणि तें, गलित मनोहर गेंद।
जस भू महँ वह भ्रमत तस, मो मन भ्रमत सखेद॥

छूटीं अलक सम्हारि ले, हे सुन्दरि सुख रासि।
क्यों डारत बरबस अली, मेरे गल में फाँसि॥
देत दुसह दुख पवन मोहिं, अञ्चल चारु उड़ाय।
कसु कामिनि करिकै कृपा, चौंदिय सुधि बिसराय॥

७। पाठक! इन कतिपय छन्दों से आपको मालूम हो जायगा, कि श्रीमान् की कविता कैसी सरस और मधुर होती है। कोमल और मधुर पदों से भूषित, गूढ़ाशयरहित, शृङ्गाररस के सब भावों के सहित, कैसी अनोखी कविता है। किस प्रकार आपने रति, हास, शोक, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय इत्यादि स्थायी भावों का आविर्भाव किया है। जड़ता, गर्व, औत्सुक्य इत्यादि सञ्चारी भाव भी विद्यमान हैं। व्यंग्य और अलङ्कारों की भी कमी नहीं है। पहले की पाँच सात चौपाइयों में प्राकृतिक शोभा का भी कैसा अच्छा वर्णन है। यह भी ध्यान देने की बात है, कि यह कथा पञ्चम स्कन्ध की है, जिसे व्यासजी ने अत्यन्त क्लिष्ट गद्य में वर्णन किया है। यदि आप लोग श्रीमान् के दशमस्कन्ध के तरल तरङ्गों के मधुर रस को पान करें, जिनमें श्रीकृष्णचन्द्र की रासलीला इत्यादि का वर्णन है, तो निश्चय है, कि आपका मन मुग्ध होकर इस काव्य-पीयूष के मधुर रस को बार बार पान करने की इच्छा करैगा।

८। भक्तिविलास। यह एक छोटा सा ग्रन्थ है जिसको श्रीमान् ने संवत् १९२७ में निर्माण किया था। इसे नवधा भक्ति की प्रत्येक उपासना के मुख्य सिद्धान्तों का दर्पण कहना अयोग्य न होगा। श्रीमान् ने एक एक विषय के ऐसे ऐसे उत्तमोत्तम और हृदयग्राही उदाहरण दिये हैं, कि जिनके पढ़ने से पढ़नेवाला तल्लीन हो जाता है। इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ में नव रस तथा नीति आदि के जो उदाहरण हैं वे भी पठनीय हैं। पाठकों के अवलोकनार्थ हम केवल एकही कवित्त उस ग्रन्थ से लेकर नीचे देते हैं—

कवित्त

कुटिल-अलकवारो, मन्द-मुसुकानिवारो,
　　कोटि चन्द जाके मुख-चन्द पर वारो है।

मुरली-लकुटवारो, पीत-पट-कटिवारो,
ललित-त्रिभङ्गवारो, सब सुख कारो है ।
रघुराज रसिक-सुजानन को प्राण प्यारो,
करुणा समुद्र कोटि अधम उधारो है ।
नन्द को दुलारो, वृन्दा-बिपिनि-बिहारवारो,
मोरपंखवारो, रखवारो, सो हमारो है ॥

९। रामस्वयम्बर। इसको श्रीमान् ने संवत् १९२७ में काशिराज महाराज ईश्वरीनारायणसिंह की इच्छानुसार रचा था। इन दोनों महाराजों में परस्पर बहुतही हार्दिक प्रेम था, ग्रैार काशिराज का हमारे चरितनायक श्रीमान् बहुत ही आदर सत्कार करते थे। वे उनसे प्रायः पितृभाव से मिलते थे तथा काका साहब कहकर पुकारते थे। काशी-रामनगर की रामलीला बहुत ही प्रसिद्ध है। महाराज ईश्वरीनारायणसिंह जी का प्रेम रामलीला से बहुत था। यहां भाद्रपद शुक्ल अनन्त चतुर्दशी से लीला प्रारम्भ हो कर आश्विन मास पर्यन्त होती है। एक समय महाराज रघुराजसिंह जी इन दिनों काशी गये, ग्रैार रामनगर में एक मास रह कर रामलीला दर्शन से अत्यन्त प्रसन्न हुए। उसी समय द्विजराज ने इनसे रघुनाथ जी की बाललीला ग्रैार स्वयम्बर को विस्तार पूर्वक कराने की इच्छा प्रगट की। उसीके अनुसार इस ग्रन्थ की रचना की गई। इसमें बाललीला ग्रैार स्वयम्बर का बहुत ही विस्तार से वर्णन है। पर ग्रैार काण्डों की भी कथायें संक्षेप से वर्णन की गई हैं। इस ग्रन्थ की कविता, मेरी समझ में, श्रीमान् के अन्यान्य काव्यों से बहुत अधिक मनोहारिणी, सरस ग्रैार मधुर है। उदाहरण मात्र से इसके अपूर्व छन्दों के छटा की छवि वर्णन करना, दुस्तर ही नहीं, किन्तु सर्वथा असम्भव है। तथापि पाठकों के अवलोकनार्थ कतिपय छन्द नीचे दिये ही जाते हैं—

विश्वामित्र की चरणसेवा।

सवैया

हैं नख दीरघ, चारिहुं ग्रोर,
कढ़ीं केतनी तरवांन बेमाई।
कारे कठोरन कंटक सी, रज
पंक भरी, उधिरी सब ठांई।
रेखन रेख बसी हैं पिपीलिका,
ते पद ग्रापने ग्रङ्क उठाई।
कोमल कैालहु ते कर सों,
रघुराज मलैं डरसों दोउ भाई ॥

देखिये मिथिला की वाटिका का कैसा अपूर्व वर्णन है—

कवित्त

कञ्चन कियारिन में फटिक फरस फावैं,
तामे झरैं मालती सुमन मनु तारा हैं।
वदन कुरङ्गन के, विविधि विहङ्गन के,
मुखन मतङ्गन तुरङ्गन कुधारा हैं।
केते कुञ्जभैान, लता भैान लोने लोने लसैं,
बल्लिन बितान त्यों निसानहूं अपारा हैं।
भनै रघुराज नवपल्लवित मल्लिका के,
ग्रमल ग्रगारा हैं, मुनारा हैं, दुग्रारा हैं ॥

कीरन की भीर कामनीन ते सहित सोहैं,
कूजि रहे कुञ्ज कुञ्ज मुनि मन हारने।
कोकिला कलापैं चित चोरत ग्रलापैं करैं,
मञ्जरी कलापैं थापै थिरता अपार ने।
भनै रघुराज केकी कूकैं सुनि चूकै चित्त,
करत चकोर चारि ग्रोरहू विहार ने।
पिक की पुकारैं, त्यों पपोहा की पुकारैं,
हिय हारैं, हर हारैं, बेसुमारैं देवदार ने॥

देखिये, मालिनियों के वचन कैसे मधुर हैं—

सवैया

तुम श्यामल गैार सुनो दोउ लालन,
ग्राये कहां से उदायन में।
मिथिलेस की वाटिका में बिहरो,
हियरो हरो, हेरि, सुभायन में।
इत कैान पठायो, दया नहिं लायो,
सुफूल न तोरो उपायन में।
रघुराज कहूं गड़ि जैहै लला,
पुहुपानि की पांखुरी पायन में॥

कामकलाजित कोशलनाथ,
वचो मम संशृणु हे मनोभावन !
तानि हरे कुसुमानि दलानि,
चिनोषि, न पश्यसि, मामिह पावन।
श्रीरघुराज तवेन्दुमुखे,
मम चित्तचकोरमवेहि विभावन।
त्वत्पदसेवनमद्य विना,
नहि मे शरणं क्वचिदस्ति जनावन ॥

यह पिछला पद्य बिलकुल संस्कृत में है।

१०। रामस्वयम्बर में श्रीमान् ने, वाल्मीकि के मतानुसार, परशुरामागमन विवाह के पीछे दिखलाया है; उस समय दशरथजी अपने चारों कुँअरों तथा वशिष्ठ और विश्वामित्र के साथ अयोध्याभिमुख प्रस्थान कर चुके थे। परशुरामागमन की सूचक बीभत्स और भयानकरसमयी ऐसी अच्छी कविता श्रीमान् ने की है, जैसी केवल शृङ्गाररस के कवियों से कभी आशा नहीं की जाती। यह पाठकों के अवलोकन योग्य है। श्रीमान् ने परशुराम से चारों कुँअरों की वार्ता, और दशरथ के विनय में, वीर, रौद्र और शान्त रस इस प्रकार दरसाये हैं कि देखतेही बनता है। विशेष करके वीर और रौद्र रस की कविता यहां पर बहुतही अपूर्व है; परन्तु स्थानाभाव से मैं उसके उदाहरण यहां पर नहीं प्रकाशित कर सकता।

११। भाषा पद्य का नमूना तो आप लोग देख चुके। अब गद्य का नमूना देकर इस विषय को मैं यहीं समाप्त करता हूं। यह एक पत्र है जो मिथिलाधिपति की ओर से कोशलाधिपति को, धनुष टूटने पर, लिखा गया है। इसके पढ़नेही से आप लोगों को मालूम हो जायगा कि श्रीमान् का हिन्दी भाषा पर कितना अधिकार था—

अथ पत्रिका

श्रीश्रीश्रीश्रीश्री, सकलभूमण्डलाखण्डल विधिकमण्डलनिस्सरितसरितवतदिग्गजगण्डमण्डलकुण्डलाकारसुयशधारक धर्मधुरन्धर धराधर्मप्रचारक रनधीर वीरशिरोमणि हंसवंसावतंस रघुकुलकमलविमलदिवामनि प्रतापतापतापितदिगन्त दुरितदुम्रन सकलदिगपालजाल मुकुटमनिनीराजितचरनचारुनखचन्द चक्रवर्त्तीचक्रचूड़ामनि महिपालमालमण्डित अखण्डितअवनिउदण्ड महाराजाधिराज राजराजिराजित अवधअवनीन्द्र दशरथजू चरनसमीप; महीप मण्डलमौलिमनिमण्डितचरन सज्जनसुखढरन भक्तजनकण्ठाभरन उत्तमाचरन चारिवरनधर्मशिक्षाकरन ज्ञानविज्ञानानन्दसन्दोहसरन वेदवेदान्तोच्चरन वैराग्यानुरागप्रचण्डचण्डकरकिरनक्षरन निमिकुलकुमुदकलानिधिनरेन्द्रशिरोमनि सीरध्वज करकमलकलित सानन्दन अभिवन्दन बिलसै। रावरो कृपापारावारधार वार वार पाय अपारसंसार-जनित-दुखसंहार भये। हे महोदार भूभरतार, ब्रह्मर्षिमुनिकुसिककुमार सङ्ग परम सुकुमार मारहू के मर्दमार धर्मधराधार बलागार श्यामलगौराकार मनोहार रघुकुलसरदार रावरे कुमार नरनारिदुखविपिनिउजारि ताड़कासंहारि कौशिक मख करि रखवारि गौतमगेहिनी उधारि जनकपुर पगधारि रुचिररचनानिहारि मम पन विचारि रङ्गभूमि सिधारि सकल महीपन को मदगारि दिगन्तयश वितान विस्तारि हियनहारि मोहिँ सोचसिन्धु ते उबारि तमारिकुलकीरति बगारि पङ्कजपानि पसारि पुरारिपिनाक तिनुकाहीं सो तोरि दये। मो हिय सुख न समात छन छन उछाह उदधि उमगात पुरजनपरिजनव्रातअभिलाष यों जनात रघुकुलजलजात रविदरश ह्वै जात सहितचतुरङ्गिनीसुभटविख्यात जनकपुर प्रविशात लगन नगिचात ताते मानस त्वरात पत्र यह जात कृपावसात तात लै बरात वेगिही पगुधारिये। हरिप्रबोधिन्यां निशानने।

१२। महाराज भाषा ही के कवि न थे। इन्होंने संस्कृत में भी कई छोटे मोटे ग्रन्थ बनाये हैं। इनमें से, इस समय, जगदीशशतक मेरे पास मौजूद है। इसे श्रीमान् ने सम्वत् १९१३ में निर्म्माण किया था। रचना का कारण और अवसर इस अद्भुत

ग्रन्थ के किसी टीकाकार ने निज व्याख्या के आरम्भ में यों लिखा है—

अथ खलु श्रीमन्महाराजधिराजः श्रीकृष्णचन्द्र-कृपापात्राधिकारी सकलसपत्नराजशिरोराजद्रत्न-राजिनी राजितचरणराजीवः श्रीरघुराजसिंहनामा बांधवाचलाधिराजः श्रीमन्नीलाचलाधिराज संदि-दृक्षया प्रस्थितो मध्येपथं तद्दर्शनविलम्बमसहमानः कदा कदा द्रक्ष्यामिति तद्दर्शनोत्सुक्यातिरेकाविष्ट-मनास्तमेवानवरतमनुसंदधानो यद्धि मनसा ध्या-यति तद्वाचा वदतीत्युक्तरीत्या वाचायितमेव तोष्ट-यमानस्तदनुसंधानजनितप्रेमपरीवाहरूपां पठनश्र-वणमात्रेण सकलजनपावनीं श्रीमज्जगन्नाथशतका-ख्यां स्तुतिमरीरचत् ॥

इस ग्रन्थ की सरसता, मधुरता, भावगम्भी-रता, पदसारल्य और अलङ्कारादि-योजना अपूर्व है। देखनेवाले का चित्त इसके एक श्लोक के पाठ करने पर, बिना आद्योपान्त पढ़े, नहीं मानता। इसके काव्यानन्द को कवि ही अच्छी तरह पा सकता है। यह मेरा काम नहीं कि मैं इसकी समा-लोचना करने का साहस करूं। मुझे तो यही नहीं जान पड़ता कि कौन सा श्लोक उदाहरणार्थ आप लोगों को भेंट करूं। मुझे तो सभी श्लोक एक ही से सरस और मधुर मालूम होते हैं। देखिये—

यद्भासा सुविभाति विश्वमखिलं सार्केन्दुतारागणं
यत्किञ्चिद्भ्रूकुटीकटाक्षकलया नाशोद्भवौ पालनम्
यत्पादाम्बुजधूलिधारणविधौ कुर्वन्ति यत्नं सुरा-
स्तन्नीलाचलवासिनं यदुपतिं वंदे जगद्वंदितम् ॥१॥

यत्पादपंकजजलं चतुराननोऽसौ
शुद्ध्यै कमंडलुमुखे सुतरां दधार।
अद्यापि मूर्द्धनि शिवो वहतीष्टरूपं
वन्दे प्रभुं पतितपावननामधेयम् ॥ १० ॥

कामस्य पाशवलितं चपलं मनो मे
संधावतीष्टविषयेषु वदामि सत्यम्।
प्राप्स्यामि केन विधिना गतिमुत्तमां ते
मामुद्धरस्व कृपया जगदीश कृष्ण ॥ ३६ ॥

हृदयहर्षणहर्षणहर्षणो
मनुजकर्षणकर्षणकर्षणः।
अवनिपोषणपोषणपोषणः
पतितपावन माधव पाहि माम् ॥ ४८ ॥

सकलगोकुलगोकुलगोकुलः
सकलगोकुलगोकुलगोकुलः।
सकलगोकुलगोकुलगोकुलः
पतित पावन माधव पाहिमाम् ॥ ४९ ॥

ज्वलितरत्नविभासविभासितं
मुकुटमण्डितमस्तकमिष्टदम्।
सुभगकुण्डलमण्डलगण्डकं
तमवलोकितुमुत्सहते मनः ॥ ५१ ॥

भवविलासनिरासविधायकं
मुनिगणाऽमलमानसभानसम्।
लसितनूपुरयुग्मपदाम्बुजं
तमवलोकितुमुत्सहते मनः ॥ ५७ ॥

अस्मादृशां पापविनिष्ठितानां
नान्योऽस्त्युपायस्तरणे भवाब्धेः
महाप्रसादं ददतं तदर्थं
श्रीमज्जगन्नाथमहं नमामि ॥ ६५ ॥

मनोहारी हारी व्रजवनविहारी यदुपति-
र्द्विषद्दारी तारी हृदि शिवविचारी सुमनसाम्।
सदा संचारी यो दिनकरकुमारीकलतटे,
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥ ८४ ॥

जयतु जलधिवासी नीलशैलेन्द्रभासी
निजजनरिपुनाशी सत्यविश्वप्रकाशी।
व्रजविपिनविलासी सर्वदा मंदहासी
नरनरकनिराशी दिव्यसौन्दर्यराशिः ॥ ९९ ॥

मयि विरतिविहीने सर्वदा नाथ दीने
मदमदनविलीने त्वं दयां संविधत्स्व।
खलसमलकुलीने सर्वदा पापपीने
निजपद जलमीने पामरेऽस्मिन्नवीने ॥ १०० ॥

जगदाधार धीरेन्द्र धराधर्मधुरंधर।
जगन्नाथ दयासिंधो रघुराजे दयां कुरु ॥ १०५ ॥

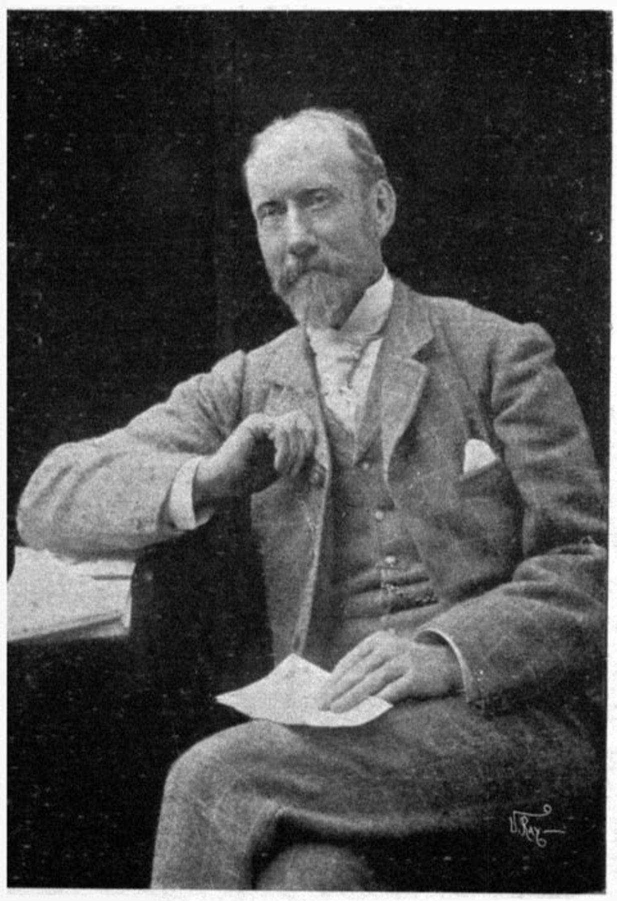

सर विलियम वेडर्बर्न ।

१३। यदि मैं श्रीमान् की समस्त पुस्तकों की आलोचना करने बैठूं, तो सम्भव है, कि वह एक बहुत बड़ा ग्रन्थ हो जाय। इसलिए अब इस विषय को मैं यहीं पर समाप्त करता हूं और इसका विचार आपही लोगों पर छोड़ता हूं कि श्रीमान् को कौन सा स्थान कविसमाज में मिलना चाहिए। मुझे तो विश्वास है कि, किसी समय, जब इनके समग्र ग्रन्थों का प्रचार भली भांति हो जायगा, तब ये भी गोस्वामी तुलसीदास, सूरदास, केशवदास आदि के समान आदरणीय होंगे और इनके काव्यपीयूष का पान पाठक वैसे ही प्रेम से करेंगे, जैसे आज कल इन कवियों के काव्यरस का करते हैं। किसीने कवियों के विषय में निम्न लिखित दोहा लिखा है—

"सूर सूर तुलसी ससी उडगन केसवदास।
कलि के कवि खद्योतसम जहँ तहँ करैं प्रकाश"॥

यदि इस दोहे को जगह पर अब यह दोहा पढ़ा जाय तो ठीक होगा—

सूर सूर तुलसी ससी शुक सुकेशवदास।
सुरगुरु श्रीरघुराज हैं सोभित सुभग अकास॥
जानहुँ अपर कवीन को अति ही अल्प उजास।
जहां तहां खद्योत सम नभ बिच करैं प्रकास॥

१४। सरस्वती के पहले पृष्ठ पर जिस विशाल मूर्त्ति का चित्र है वह इन्हीं महाराज की अनुपम मूर्त्ति है। मुझे तो इनके साक्षात् दर्शन का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ; किन्तु जिन लोगों ने इन्हें देखा है वे इनकी सुन्दरता की बहुत बड़ाई करते हैं। इनका वर्ण गौर, माथा ऊंचा और क़द लम्बा था। इनके नेत्र बहुत बड़े बड़े थे। भुजायें इतनी लम्बी थीं कि ये यहां आजानुबाहु प्रसिद्ध हैं। शरीर स्थूल तो था, किन्तु क़द लम्बा होने से स्थूलता इनकी सुन्दरता को द्विगुणित करती थी। सहस्रों मनुष्यों की भीड़ में भी इनका मस्तक ऊपर रहता था। आप अत्यन्त प्रियवादी, नीतिज्ञ और उदार थे। दाता ऐसे थे कि मथुरा, जगदीश, काशी इत्यादि तीर्थों में जाकर आपने हेम-तुला दान दिये। स्थूल शरीर तो थे ही, उस पर तुला पर बैठते समय कुल राजसी पोशाक के साथ शस्त्र अस्त्र से सुसज्जित हो लेते थे। इनके प्रत्येक तुलादान में कम से कम पाँच मन सुवर्ण लगता था। इस दान से उन तीर्थों के विद्वान् और दीन ब्राह्मणों को ये सन्तुष्ट करते थे। निज राज्य में भी कई सहस्र के आय को भूमि आपने ब्राह्मणों को सर्वदा के लिये पैर-पखार दे दी है। लगभग ६० सहस्र के आय की भूमि श्रीमान् के गुरुस्थान लक्ष्मणबाग़ के स्वामी के आधीन देवार्थ लगी है। सुतरां इन्हें कलियुग का कर्ण कहना अत्युक्ति नहीं है। ये पूर्ण हरिभक्त थे। और स्वधर्म में इतने दृढ़ थे, कि शास्त्रोक्त त्रिकाल सन्ध्योपरान्त २४,००० अष्टाक्षर मन्त्र का जप प्रति दिन किया करते थे। इसके सिवा नित्य वाल्मीकीय रामायण के बालकाण्ड का पाठ और भगवान द्वारिकाधीश की आराधना भी इनका नित्य कर्म था। शील के तो आप सागर ही थे। यदि राज्य का कोई कर्मचारी अथवा प्रजा कैसा ही अपराध कर, सौभाग्य वश, इनके सम्मुख पहुंच जाता तो आप उससे कुछ नहीं कहते थे। और उसके सब अपराधों को भूल कर आप उससे सप्रेम वार्तालाप करते थे। अन्त में आप ऐसा प्रबन्ध कर देते थे कि न्यायालय से उसका अपराध क्षमा कर दिया जाता था। यदि राज्य की कोई वस्तु इनके सामने से भी कोई ले जाता हो तो ये उसे देखी अनदेखी कर जाते थे। ऐसा सुना जाता है कि एक समय राज्य का एक बड़ा कर्म्मचारी सरकारी कोष से बहुत सा द्रव्य मटकों में रखवाता था। ऊपर से कुछ मिठाई इत्यादि से उसे वह ढकवाता था। इस तरह वह उसे अपने घर भिजवाता था। रास्ते में एक बार जब यह मृगया से लौटे आते थे, तब मटकों को लेजानेवाले कहारों से इनसे साक्षात् हो गया। साथियों में से किसी की शिकायत पर, इन्होंने कहारों को बुला कर एक घड़ा खोला, तो उसमें द्रव्य मिला। तब श्रीमान् ने केवल इतना ही कहा था कि—"यह अपूर्व मिठाई

है। किन्तु यदि तुम्हारे स्वामी ने ऐसी अनमोल मिठाई भेजते समय लुटेरों से रक्षा के लिये कुछ सवार इत्यादि का भी बन्दोवस्त कर दिया होता तो उत्तम होता"। यह कह कर कहारोंके चले जाने की आपने आज्ञा दे दी; और तब से उस विषय की चर्चा भी कभी आप अपने मुंह से नहीं की।

१५। श्रीमान् बड़े बुद्धिमान् थे। इनकी बुद्धि ऐसी विलक्षण थी, कि राज्य-सम्बन्धी कठिन से कठिन कार्य्य भी यह सरलता से पूरा कर डालते थे, जिनके करने में बड़े बड़े कर्म्मचारी नीतिज्ञों की बुद्धि चक्कर में आ जाती थी। इसका एक छोटा सा उदाहरण लीजिए। यह उस समय की घटना है जब ये युवराज थे, और इनके सुयोग्य पिता जीवित थे। इनके पितामह का गुरुस्थान निपनिया है, जहां पर अग्निहोत्री ब्राह्मण रहते हैं। ये लक्ष्मण बाग़ के स्वामी आचारी के शिष्य थे। एक समय इन दोनों गुरुकुलों में कुछ झगड़ा पड़ गया। लक्ष्मण बाग़ के स्वामी जी निपनिया पर तोप इत्यादि लेकर, चढ़ाई करने की तय्यारी करने लगे। यह समाचार सुन कर महाराज विश्वनाथसिंह और उनके कर्म्मचारी बहुत घबराये। इधर तो पिता का गुरु स्थान, उधर युवराज का। गुरु को रोकना या उनको आज्ञा-भङ्ग करना ये लोग महा पातक समझते थे। अन्त में हमारे चरितनायक बुलाये गये। समाचार सुन कर इन्होंने पिता से निवेदन किया कि "इस विषय में श्रीमान् कुछ चिन्ता न करें; मैं शीघ्र इसका ऐसा प्रबन्ध किये आता हूं कि जिसमें धर्म भी न जाय और यह झगड़ा भी निर्विघ्न समाप्त हो जाय"। यह कह कर तुरन्त निज गुरुस्थान लक्ष्मणबाग़ में आप पहुंचे। आपने स्वामी जी को साष्टांग प्रणाम किया और उनसे अपनी इच्छा युद्ध में साथ देने की प्रगट की। स्वामी जी ने अति प्रसन्न हो कर इन्हें उस युद्ध का सेनापति बनाया। इन्होंने तुरन्त गोलन्दाजों को बुलाकर यह आज्ञा दी कि अमुक स्थान पर तोपें लगा कर निपनिया पर ऐसा गोला बरसावो कि वहां के स्त्री, पुरुष और बच्चे ही नहीं, वरन गाय बैल इत्यादि जीवजन्तु भी ध्वंस हो जांय।" स्वामी जी स्त्री, बच्चे, गाय और बैल का नाम सुनकर चिहुंक उठे, और कहा कि "नहीं, नहीं, केवल पुरुषही पुरुष मारे जांय"। श्रीमान् ने विनय किया कि "दयासागर, यह कैसे सम्भव है कि स्त्री, बच्चे, गाय और बैलों पर तोप के गोले दया दृष्टि रक्खें"। सारांश यह कि स्वामी जी ने इस चातुरी के उत्तर से युद्ध की आज्ञा रोक दी। कुछ दिनों बाद इन्होंने दोनों गुरुकुलों में प्रेम भी करा दिया।

१६। पितृभक्त तो ये बड़ेही थे; किन्तु भ्रातृस्नेह भी इनमें कम न था। सहोदर भाई तो श्रीमान् के कोई न था। पर चचा के पुत्र, माधवगढ़ के बाबू साहब, श्रीयुक्त रामराजसिंह से इनका ऐसा स्नेह था कि उनके बिना देखे यह एक क्षण भी नहीं रह सकते थे। यह प्रजा को पुत्रवत् मानते थे। गुरु के ऊपर जैसा इनका प्रेम था वह ऊपर वर्णन ही हो चुका है। प्रजावर्ग श्रीमान् को किस प्रकार हृदय से चाहते थे, उसका एक उदाहरण सुनिये। दरबार के ऊपर सरकार अङ्गरेज़ का १० लक्ष मुद्रा क़र्ज़ था। श्रीमान् की दानशीलता के कारण इतना रुपया एकबारगी इकट्ठा होना दुस्तर था। गवर्नमेण्ट से मीठा मीठा तक़ाज़ा भी आने लगा। आपने अपने प्रिय दीवान दीनबन्धु को बुलाकर पूछा कि क्या करना चाहिये, जिसमें यह क़र्ज़ अदा हो जाय। दीवान दीनबन्धु ने राज्य के सरदारों और मुखियों को बुलाकर एक सभा की जिसमें सब लोगों ने प्रेम से चन्दा कर सहर्ष १० लाख रुपया बात की बात में इकट्ठा कर दिया और एक ही सप्ताह में सब रुपया गवर्नमेण्ट को भेज दिया गया। पाठकगण, प्रजा की असीम राजभक्ति का और क्या उदाहरण हो सकता है?

१७। श्रीमान् राजनीति में बड़े ही निपुण थे; अपने एकही अधिकारी के आप कभी पूर्णतः वशीभूत नहीं होते थे। इनके राज्यकाल में पण्डित वंशीधर, मथुरानाथ, दीनबन्धु तथा लाल रणदमन-

सिंह क्रमशः दीवान हुए। लाल रणदमनसिंह के वैकुण्ठवास के बाद पण्डित दीनबन्धु पुनः दीवान हुए थे। कुछ दिनों के लिए महाराष्ट्रदेशीय पण्डित दिनकरराव भी यहां दीवानी पाने की इच्छा से आये थे; किन्तु श्रीमान् परदेशियों को इस पद पर नियुक्त करना नीतिविरुद्ध समझते थे। बरेली के पण्डित हेतरामजी, दीवान दीनबन्धु के समय ही से, नायब दीवान थे। दीनबन्धु के मरने पर १० या ११ महीने तक, जब तक श्रीमान् का वैकुण्ठ-वास नहीं हुआ, पण्डित हेतराम जी पूरे दीवान नहीं हुए थे; यद्यपि सब कार्य्य दीवानी के वे करते थे। जब जब किसी दीवान या बड़े कर्म्मचारी से महाराज असन्तुष्ट होकर, दूसरे को अधिकार देना चाहते थे, तब तब ऐसी गुप्त रीति से उसका सब अधिकार खींच लेते थे, कि वह स्वयं निरुत्साह होकर, इस्तेफ़ा दे देता था। किन्तु ऊपरी प्रेमालाप श्रीमान् का सर्वदा वही बना रहता था।

१८। श्रीमान् के समय में निम्नलिखित सरदारों का बहुत मान था और ये श्रीमान् के बहुत ही प्रियपात्र थे—लाल हरचन्द्रराय हारौल; हारौल सरदार पुष्करसिंह सामन्त; रामगढ़ के सरदार दिग्गजसिंह चन्द्रौल; देवरा-रामनगर के श्रीलाल दिग्गजसिंह कमाण्डर-इन-चीफ़; लाल कल्याणसिंह कर्नल; श्रीलल्लाबहादुर वकील दरबार; तथा श्री बांकेसिंह प्राइवेट सेक्रेटरी।

१९। संवत् १९२४ में श्रीमान् ने एक बहुत बड़ा वाजपेय यज्ञ किया। इस यज्ञ में एक लक्ष पचीस सहस्र से ऊपर रुपया व्यय हुआ। बड़े बड़े विद्वान् और पण्डित, जो वेदोक्त यागादि कार्य्यों में अत्यन्त चतुर और कुशल थे, इस यज्ञ में, देश-देशान्तर से, बुलाये गये थे। उनका यथोचित् सत्कार भी किया गया था। यज्ञ, निर्विघ्न पूर्ण होने पर, श्रीमान् ने साम्राट् की उपाधि को धारण किया था।

२०। संवत् १९१३ के अन्त में, श्रीमान् ने जगदीशदर्शन के लिए, पुरी की ओर, बिलासपुर और सम्भलपुर की तरफ़ से, सकुटुम्ब प्रस्थान किया। जब आप पुरी ही में थे, भारत गवर्नमेण्ट का ख़रीता पहुँचा कि हिन्दुस्तान में बलवा हो गया। श्रीमान् की सलाह लेने के लिए बड़े लाट ने इन्हें कलकत्ता बुलवाया। स्त्रियों को रीवां पहुंचा कर श्रीमान् ने कलकत्ते जाने का वचन दिया। फिर गया में पिण्डदान करते हुए आप शीघ्र ही मिरज़ापुर पहुंचे। यहां इन्हें बाग़ियों के एक बड़े गरोह से सामना हुआ। श्रीमान् के साथ में स्त्रियां थीं और सेना की न्यूनता थी; इससे उनसे लड़ना उचित न समझ, आपने उनसे प्रेम से वार्तालाप किया। बाग़ियों ने इनसे फ़ौज और द्रव्य की सहायता मांगी; और दिल्ली का सिंहासन देने का वादा किया। श्रीमान् ने स्त्रियों को रीवां पहुंचाने पर, उन्हें फ़ौज और द्रव्य से सहायता देने का वचन देकर, युक्ति से उनसे पिण्ड छुड़ाया। और रीवां पहुंच कर, आपने अपनी सीमा पर ऐसा कठिन बन्दोबस्त कर दिया, कि बाग़ी राज्य में घुसने न पावें। यह करके भारत गवर्नमेण्ट को सहायता के लिए, स्वयं अपनी सेना और तोपें इत्यादि लेकर, मैहर राज्य पर, जहां कि उस समय बहुत बाग़ी थे, आप चढ़ गये। शीघ्र ही वहां के क़िले को श्रीमान् ने तोड़ दिया और बाग़ियों को तितर बितर कर दिया। इस प्रत्युपकार में गवर्नमेण्ट की ओर से, सोहागपुर का इलाक़ा, जो अब तक राज्य में शामिल है, मिला। इससे श्रीमान् की दूरदर्शिता और बृटिशराज्य-भक्ति पूर्णतः झलकती है।

२१। जब सन् १८७२ ई० में, ड्यूक आफ़ एडिनबरा (His Royal Highness the Duke of Edinborough), जोकि श्रीमती राजराजेश्वरी महारानी विक्टोरिया के द्वितीय पुत्र थे, भारतवर्ष देखने के लिए आये थे, तब आगरे जाकर आप उनके दरबार में शरीक हुए थे। तदनन्तर ही भारतवर्ष के राजा महाराजाओं को मिलनेवाले ख़िताबों में से सबसे बड़े, जी० सी० एस० आई० (Grand Kinght Commander of the most

exalted order of the Star of India) के खिताब से आप आभूषित किये गये। श्रीमान् के चित्र में इसीका पदक आपकी दक्षिण भुजा को सुशोभित कर रहा है। लार्ड मेयो से आपका हार्दिक प्रेम और मित्रभाव था।

२२। सन् १८७५ ई० में, आप महारानी के ज्येष्ठ पुत्र, युवराज प्रिन्स आफ़ वेल्स, अर्थात् हमारे वर्त्तमान सम्राट् सप्तम एडवर्ड, की मुलाक़ात के लिए कलकत्ता गये थे। और दो वर्ष बाद सन् १८७७ ई० के दिल्ली के वृहत् दरबार में, जब श्रीमती विक्टोरिया महारानी ने भारतवर्ष की राजराजेश्वरी की उपाधि ग्रहण की थी, आप पधारे थे। उसी समय आपकी सलामी में दो फ़ैर और बढ़ा दी गईं, अर्थात् १७ फ़ैर से १९ फ़ैर कर दी गईं।

२३। यद्यपि श्रीमान् का जीवन सर्वतोभाव से सुखमय था, तथापि एक मानसिक दुःख भी आपको ऐसा था, जो श्रीमान् के हृदयकमल को समय समय पर कुम्हिला देता था। आपके बारह विवाह हुए थे, किन्तु खेद की बात है कि बारह महाराणियों में से, महाराज की तिरपन वर्ष की अवस्था तक, जितनी सन्तान उत्पन्न हुई, कोई भी जीवित न रही। इधर महाराज की अवस्था ढल जाने के कारण, महाराज सामयिक व्याधियों से भी पीड़ित रहा करते थे। उत्तराधिकारी न होने के सबब से, युवराज पद किसको दिया जाय; राज्यशासन कौन करेगा, इत्यादि चिन्तायें उनको, समय समय पर, और भी दुःखित करती थीं। शरीर की दशा दिन पर दिन क्षीण होती देख, अपनी जीवित अवस्थाही में, श्रीमान् ने, कलकत्ते जाकर, १८७५ ई० में, समस्त राज्यकाज बृटिश गवर्नमेण्ट के आधीन कर दिया। और आप सांसारिक झमेलों से हाथ खींच, तीर्थ पर्य्यटन, ईश्वराराधन, तथा साधुसेवा में समय व्यतीत करने लगे।

२४। रीवां से १० मील दक्षिण, पर्वत के नीचे, एक अपूर्व स्वभाविक झील के तट पर श्रीमान् ने गोविन्दगढ़ नामक एक नगर विशेष व्यय से बसाया था। इस नगर की मनोभाविनी छवि मनुष्य मात्र को मोहित कर लेती है। श्रीमान् को यह नगर अत्यन्त प्रिय था, और वहीं पर, आपका तीर्थादि स्थानों से लौटने पर, विशेष कालक्षेप होता था।

२५। ईश्वर की लीला भी क्याही विचित्र और अपरम्पार है, कि उसे सांसारिक जीव मात्र के सुख दुःख परिवर्त्तन कर देने में तनिक भी देर नहीं लगती। ऐसे हताश महाराज के ५४ वर्ष की अवस्था में, हमारे वर्त्तमान महाराज, श्री १०८ सर वेङ्कट-रमणसिंहजू देव बहादुर, जी० सी० एस० आई०, का जन्म, श्रावण कृष्ण तृतीया संवत् १९३३ को हुआ, जिससे श्रीमान् की हृदय-बेल को मनोरथ-लता, जो चिन्ता-तुषार से मुर्झा गई थी, पुत्रोत्सव के आनन्द-बूंदों से सिञ्चित होकर, एक बारही लहलहा उठी। किन्तु यह लिखते हमको अत्यन्त खेद होता है, कि श्रीमान् अपने इस वृद्धावस्था के परम सुख को विशेष काल तक भोगने का अवसर विधाता की वामगति के कारण न प्राप्त कर सके। अर्थात् जिस समय वर्त्तमान महाराज की अवस्था केवल तीनही वर्ष की थी, आप समस्त सांसारिक सुखों को स्वप्नवत् छोड़, सत्तावन वर्ष की अवस्था में, माघ कृष्ण नवमी, संवत् १९३६, अर्थात् ४ फ़रवरी सन् १८८० ई० को, अपने प्यारे पुरजन, परिजन, तथा भ्रातृजनों को शोकसमुद्र में छोड़, परमपवित्र, निज राज्य-गुरुस्थान, लक्ष्मण बाग़ में, इस असार संसार को परित्याग कर, वैकुण्ठधाम को पधारे।

इस लेख का कुछ अंश श्रीमल्लाल बलदेवसिंह जी लिखित आनन्दाम्बुनिधि की भूमिका से लिया गया है, जिसके लिए मैं लाल साहब का कृतज्ञ हूं।

जीतनसिंह।

ईशवन्दना।

[१]

हे कारुणीक! करुणामय! दीनबन्धो
प्रातर्नमामि तव पाद दयैकसिन्धो।
ह्वै के प्रसन्न विनती मम कान कीजै
जो मैं चहौं सुरुचि ते वह मोहिँ दीजै ॥

[२]

जैसी दया तुम करी ध्रुव बाल पै है
वैसी दया करन की अब बारि या है।
नीरोग औा सुदृढ़ मोर शरीर कीजै
विद्या-विनोद महँ नेह सुगाढ़ दीजै ॥

[३]

देशानुराग अरु बान्धव-प्रेम मेरे
हृद्देश से नहिँ हटैं बिधि केहु प्रेरे।
देशोपकारक लखाहिँ विधान जेते
राजैं सदैव मम मानस माहिँ तेते ॥

[४]

वाणिज्य औा कृषि बढ़ावनहार बातैं
जो जो जहाँ मिलि सकैं उनको वहाँ ते,
लै लै प्रचार करिबे कहँ मोहिँ दीजै
सामर्थ्य; नाथ! बिनती यह कान कीजै ॥

[५]

वाष्पीय यन्त्र अरु विद्युत शक्ति द्वारा
पाश्चात्य बन्धु करहीं निज देश केरा
लोकोपकार, जिमि, स्वारथ नेह रीते
मैंहू करों तिमि सदा निज बाहु बूते ॥

[६]

जो जो धनाढ्य जन भारत के निवासी
सो सो समाजन रचैं तजि कै उदासी।
वाणिज्य, शिल्प, कृषि को नित ही बढ़ावैं
राजा, प्रजा सबन के मन मोद पावैं ॥

[७]

हे हे दयाघन! विभो! जन-दुःख-हारी!
ज्यों थी सुनी तुम प्रभो! गज की पुकारी।
त्यों धाय नाथ! मम टेर सुनौ कृपाल
औा शीघ्र ही भरत-भूमि करौ निहाल ॥

[८]

न्यायी, सुखी. अरु पराक्रम बुद्धिवारे
कर्त्तव्य-कर्म्म-रत सज्जन शीलधारे।
आबाल-वृद्ध नर-नागर ग्रामवासी
होवैं गुणी सकल ये मम देशवासी ॥

गङ्गाप्रसाद अग्निहोत्री।

सभ्यता।

[१]

अद्भुत तेरी माया; उसका
कोई पार न पाते हैं;
विविध भाँति से विद्वज्जन तव
गुण की गरिमा गाते हैं।
देश देश में भेष बदलती
चलती फिरती आती है;
मदमाती, अपने यैावन को
हाथों हाथ लुटाती है ॥

[२]

विद्या-धन-कुल-रूपवान नर
ढूँढ ढूँढ अपनाती है;
जिसे चाहती उसको हो तू
स्वामी सुभग बनाती है।
छी! छी! ऐसा बुरा कर्म्म कर,
ज़रा नहीं सकुचाती है;
जो तुझको भाता उसको ही
अपनी ओर झुकाती है ॥

[३]

तिस पर भी तुझको पाने के
लिए लोग अकुलाते हैं;

बिना विचारे सब आ आकर
तुझसे हाथ मिलाते हैं।
तेरे बिन धन-यौवन-शाली
आदर अधिक न पाते हैं;
जिन पर तेरी कृपा नहीं वे
निरे असभ्य कहाते हैं।

[४]

रूपहीन कुलहीनों को भी
तू अति ऊंच बनाती है;
ज्यों ज्यों तुझसे प्रेम करें नर,
त्यों त्यों तू सरसाती है॥
आते ही तू जनसमाज पर
निज अधिकार जमाती है;
सारे जग की सभ्य जाति को
नूतन नाच नचाती है।
झूठ बुलाती; क़सम खिलाती;
और अपेय पिलाती है;
कभी हँसाती; कभी रुलाती;
नाना खेल खिलाती है॥

[५]

कभी कभी जन तुझको पाकर
मनही मन पछताते हैं।
तो भी तेरे मोहजाल से
नहीं छूटने पाते हैं।
अधिक गुणी जो, वे ही तेरे
अधिक दास हो जाते हैं;
नहीं जानता मैं वे तुझसे
क्या ऐसा कुछ पाते हैं॥

[६]

नहीं कभी भी ग्रामीणों को
तू चल कर अपनाती है;
रूपवान श्रीमान क्यों न हों;
उनसे घृणा दिखाती है।
कुलबाला तव देख वदन-विधु
नलिनी सम सकुचाती हैं;
चारुहास करके धीरे से
घूंघट में घुस जाती हैं॥

सत्यशरण रतूड़ी।

शिक्षाशतक।

[गत अङ्क के आगे]

(६१)

कवितानुभव-जनित सुख-भोग।
पा सकते नहिँ अरसिक लोग॥
शरदचन्द की छटा विशेष।
अन्धे कभी न सकते देख॥

(६२)

कविवाणी सुन, रसिक अमन्द।
पाते जो मन में आनन्द॥
सो कब पा सकता मतिहीन।
जो सहृदयता-वित्त-विहीन॥

(६३)

मन्दवह्नि को अति आहार।
दुर्बल जन को गुरुतर भार॥
कुमति नृपति को राज्य यथाम।
होता है दुख का परिणाम॥

(६४)

नीति सहित कर धन उत्पन्न।
करो सुकृत कारज सम्पन्न॥
इसमें है सब बिधि कल्याण।
सभी ठौर होगा सन्मान॥

(६५)

जो समुचित व्यय से मुँह मोड़।
झुकते अपव्ययों की ओर॥
वे कुछ दिन में अपना माल।
व्यर्थ उड़ा, होते कङ्काल॥

(६६)

जो कुकार्य में अभिमत द्रव्य ।
फूँक, दिखाते निज सामर्थ्य ॥
सो अपनी करनी पर आप ।
पछताते पाकर उत्ताप ॥

(६७)

जो कुसङ्गवश निज सम्पत्ति ।
खोते, सो पा, विषम विपत्ति ॥
पछताते मल दोनों हाथ ।
अन्त न कोई देता साथ ॥

(६८)

जो अपनी आमद अनुसार ।
करते हैं सब काज बिचार ॥
कभी न वे ऋण लेने हेत ।
कर फैलाते विनय-समेत ॥

(६९)

जो करता है मदिरा-पान ।
रखता नहीं धर्म का ध्यान ॥
सो कुछ दिन में हो विक्षिप्त ।
असुर कर्म में होता लिप्त ॥

(७०)

बिगड़े दिलवालों के सङ्ग ।
रहने से होता मति-भङ्ग ॥
इस से उनका करना साथ ।
मानो विपद चढ़ाना माथ ॥

(७१)

पहले प्रेम दिखाकर नीच ।
लेता अपने मत में खींच ॥
मतलब गाँठ भले, दे ताप ।
पीछे हट जाता है आप ॥

(७२)

निज सुशीलपत्नी को त्याग ।
करते परतिय से अनुराग ॥
अन्तकाल वे हो बेचैन ।
झखते रहते हैं दिन रैन ॥

(७३)

जो अपने पति के प्रतिकूल ।
चल, हठ वश करती हैं भूल ॥
वे दिन दिन पातीं दुख ढेर ।
पछताती निज पातक हेर ॥

(७४)

जहाँ दम्पती-प्रेम अभङ्ग ।
होता वहाँ न दुख का सङ्ग ॥
जीवन सुख पाते सब तौर ।
उनसे बढ़कर सुखी न और ॥

(७५)

पिशुन, पाप, वैरी, ऋण, रोग ।
औ अपकारी हैं जो लोग ॥
वे हैं प्रतीकार के जोग ।
विना दबे देते हैं सोग ॥

(७६)

सत् सेवक निज कार्य समान ।
कर्म, वचन, मन से हित ठान ॥
स्वामी की सेवा कर नित्य ।
होगा किसी समय कृतकृत्य ॥

जनार्दन झा ।

हेमन्त ।

[१]

हेमन्त में महिष-अश्व-वराह-जाति
होती प्रसन्न अतिही गज-काक-पांति ।
पुन्नाग, लोध्र तरु ये नित फूलते हैं;
भौंरे सदैव इन ऊपर झूलते हैं ॥

[२]

वियोगिनी वाम महा मलीन;
होतीं दिशायें सब दीप्तिहीन ।

अम्भोज सारे बिन पत्र क्षीण;
भुजङ्ग होते बिन वीर्य्य दीन ॥

[३]

हुआ हिमाच्छादित सूर्य्यमण्डल;
समीर सीरी बहती अखण्डल।
प्रियङ्गु के पेड़ प्रफुल हो चले;
हरे हरे अङ्कुर खेत में भले ॥

[४]

आनन्द देती न समीर शीत;
हुए सभी हैं उससे विभीत।
न चाँदनी मञ्जुल है सुहाती;
नदी, नदों की लहरी न भाती ॥

[५]

सौभाग्य से जो पति-युक्त बाला;
देता कसाला उनको न पाला।
माला नहीं वे अब धारती हैं;
विश्लेष की भीति विचारती हैं ॥

[६]

अच्छे दुशाले सित, पीत, काले;
हैं ओढ़ते, जो बहु-वित्त-वाले।
तोभी नहीं बन्द अमन्द सी सी;
हेमन्त में है कँपती बतीसी ॥

मैथिलीशरण गुप्त।

कांग्रेस के कर्ता।

कांग्रेस क्या चीज़ है इसके बतलाने को ज़रूरत नहीं। कांग्रेस का अर्थ प्रायः सभी जानते हैं, चाहे वे अङ्गरेज़ी जानते हों चाहे न जानते हों। हां, अख़बारों से उनका परिचय होना चाहिए। १९०४ की कांग्रेस, इसी महीने, अर्थात् दिसम्बर में, होनेवाली है। उसके होने के पहले ही हम यह लेख लिख रहे हैं। इसीसे हम तदनुकूल शब्द प्रयोग करते हैं। इस बार उसका लीलास्थल बम्बई है। वहां, पालव बन्दर के मैदान में, एक सुदक्ष पारसी यञ्जिनियर उसके लिए एक भव्य भवन बना रहे हैं। कुल १७ विषयों पर वाद प्रतिवाद होगा। इन विषयों में से कई विषय पुराने हैं। नये विषयों में से एक विषय यह है कि पार्लिमेण्ट में हिन्दुस्तानी प्रतिनिधि लिये जांय। दूसरा यह है कि कांग्रेस की तरफ़ से हिन्दुस्तानी प्रतिनिधि इङ्गलैण्ड भेजे जांय और वहां वे इस देश की आवश्यकताओं को, वक्तृतायें देकर, प्रकट करें। और भी कई विषय ऐसे हैं जिनसे इस देश का बहुत कुछ लाभ हो सकता है। परन्तु कांग्रेस का काम प्रार्थना करना है। उनको मञ्ज़ूर करना या न करना गवर्नमेण्ट का काम है।

इस बार की कांग्रेस के सभापति आसाम के भूत-पूर्व चीफ़-कमिश्नर सर हेनरी काटन होंगे। आप इस पद के ग्रहण करने के लिए इङ्गलैण्ड से आते हैं। उनके साथ सर विलियम वेडरबर्न भी आते हैं। काटन साहब के कारण इस कांग्रेस में विशेष सजीवता आ जाने की सम्भावना है। आपका पूरा नाम है एच. जे. एस. काटन, के. सी. एस. आई.।

काटन साहब की कई पुश्तें इस देश में बीत चुकी हैं। जोसेफ़ काटन इनके परदादा थे; जान काटन इनके दादा थे; और जोसेफ़ जान काटन इनके पिता थे। ये लोग इस देश में आकर बहुत दिनों तक अच्छे अच्छे पदों पर रहे थे। इनके पिता मदरास हाते में १८३१ से १८६३ तक सिविलियन थे। इनका जन्म १८४५ ई० में, कुम्भकोण में, हुआ था। इनके एक भाई हैं। उनका नाम है जे. एस. काटन। वे भी इन्हींकी तरह हिन्दुस्तान से प्रीति रखते हैं। उन्होंने "इङ्गलिश सिटीज़न" नामक पुस्तक-माला में हिन्दुस्तान पर एक बहुत अच्छी किताब लिखी है। उसमें उन्होंने हिन्दुस्तानियों को अङ्गरेजों की बराबरी का बतलाया है। काटन साहब के भी दो लड़के इस समय इस देश में है। एक कलकत्ते में हाईकोर्ट के ऐडवोकेट हैं; दूसरे मदरास हाते में सिविलियन हैं।

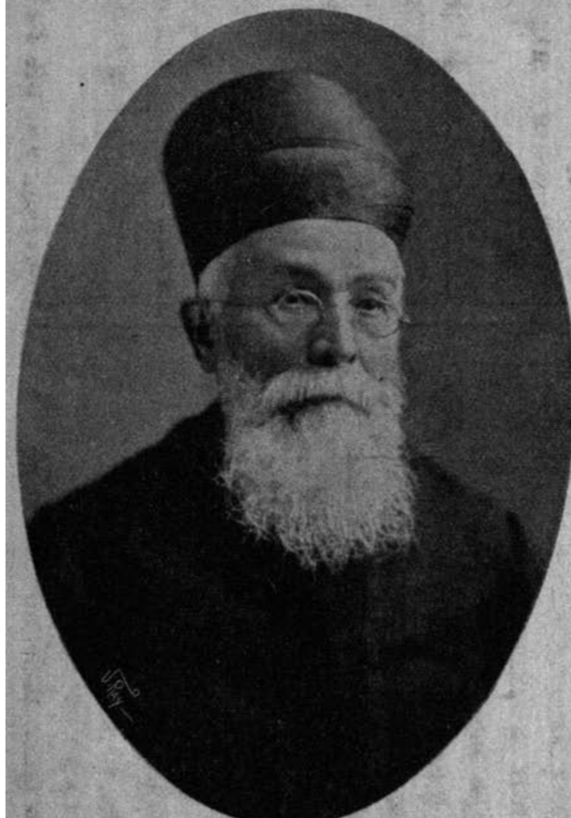

मिस्टर दादाभाई नौरोज़ी ।

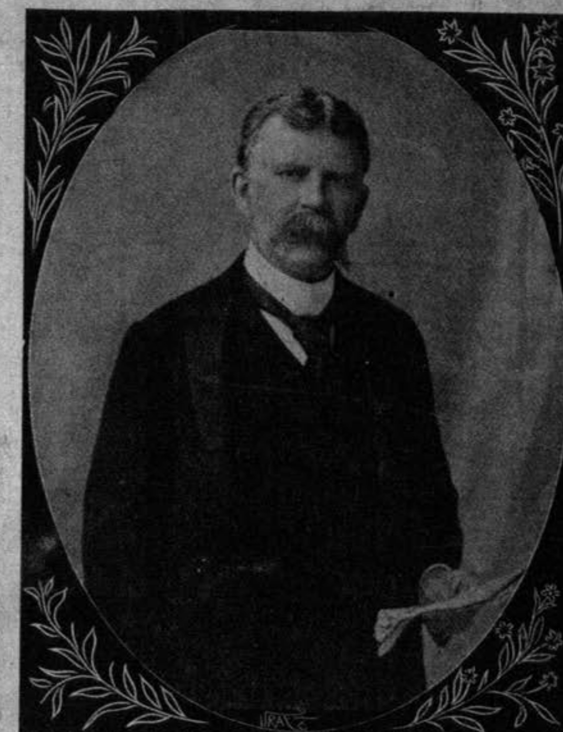

सर हेनरी काटन, सी० आई० ई०

मिस्टर दिनशा इदलजी वाचा।

आनरेब्ल सर फ़ीरोज़शाह मेहता, के० सी० आई० ई०

काटन साहब ने आक्सफ़र्ड और लण्डन में विद्याभ्यास किया। सिविल सरविस की परीक्षा पास करने पर, १८६७ में, वे मेदिनीपुर में असिस्टण्ट कलक्टर नियत हुए। धीरे धीरे उनकी तरक्क़ी होती गई। अनेक ऊंचे ऊंचे पदों पर काम करके १८९३ में वे आसाम के चीफ़ कमिश्नर हुए। १८९६ में वे सी० यस० आई० हुए और १९०२ में के० सी० एस० आई०। चीफ़ कमिश्नरी से उन्होंने पेन्शन ले ली। काटन साहब की इस देश और इस देशके रहनेवालों पर बड़ी प्रीति है। आपने "न्यू इण्डिया" नाम की एक किताब लिखी है। उसमें इस देश की वर्तमान दशा का बहुत ही अच्छा वर्णन है। उसे हिन्दुस्तानी मात्र को पढ़ना चाहिए। आसाम में चाय के अनेक बाग़ हैं। उनमें जो क़ुली काम करते हैं उन पर साहब लोग अकसर बड़ी सख्ती करते हैं। यह बात काटन साहब से, चीफ़ कमिश्नरी की हालत में, देखी नहीं गई। उन्होंने क़ुलियों का ख़ूब पक्ष लिया। इस पर उनसे उनके देशवासी अङ्गरेज़ सख्त नाराज़ हुए। पर उन्होंने इसकी ज़रा भी परवा नहीं की। खुले मैदान, कौंसिल में, उन्होंने क़ुलियों की दशा का, उन पर होनेवाले अत्याचारों का, और अपने सहानुभूतिसूचक विचारों का बड़े आवेश में आकर वर्णन किया। काटन साहब अच्छे समाज-संशोधक हैं और कांग्रेस के पक्षपाती हैं। जब तक वे इस देश में रहे, छोटे से लेकर बड़े तक, सबसे वे मिलते रहे। कभी किसी से मिलने से उन्होंने इनकार नहीं किया। एक दफ़ा अपने मुंह से उन्होंने कहा—

The excuse of "फ़ुरसत नहीं" is abhorent to me—अर्थात् फ़ुरसत न होने का बहाना बतलाने से मुझे नफ़रत है। ऐसे महामना और उदारचेता काटन साहब इस कांग्रेस के सभापति वर किये गये हैं।

१९०४ की कांग्रेस बम्बई में है। इस लिए उस प्रान्त के दो एक प्रसिद्ध कांग्रेसवालों का परिचय भी, लगे हाथ, हम करा देना चाहते हैं। उनमें से प्रथम स्थान दादाभाई नौरोजी का है। वे इस कांग्रेस में न आ सकेंगे। पर वे उसके पूरे पक्षपाती हैं।

दादाभाई का जन्म, बम्बई में, १८२५ ई० में हुआ था। इनके पिता एक पारसी-पुरोहित थे। वहीं, बम्बई में, इनकी अङ्गरेज़ी शिक्षा समाप्त हुई। अनन्तर ये एल्फ़िन्सटन कालेज में अध्यापक नियत हुए। अपने काम से इन्होंने कालेज के अधिकारियों को ख़ूब ख़ुश किया। कुछ समय तक ये विद्या-सम्बन्धिनी एक गुजराती सभा के सभापति रहे। फिर इन्होंने रास्त-गुफ़्तार नामक एक गुजराती अख़बार निकाला। दो वर्ष तक ये उसके सम्पादक रहे; फिर छोड़ दिया। यह अख़बार अब तक जारी है। १८५५ ईसवी में ये इङ्गलैण्ड गये और वहां व्यापार करने लगे। तब से वे वहीं रहते हैं। यहां भी कभी कभी आ जाते हैं। १८७४ में, कुछ काल तक, ये बरौदा में गायकवाड़ के दीवान थे। ये "हौस आफ़ कामन्स" अर्थात् पार्लिमेण्ट के एक बार सभासद हो चुके हैं। अब फिर उस में प्रवेश पाने का ये यत्न कर रहे हैं। ये पहले हिन्दुस्तानी हैं जिनको पार्लिमेण्ट में बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। एक बार, बम्बई में, गवर्नर के कौंसिल में भी यह बैठ चुके हैं। यद्यपि ये बहुत बूढ़े हैं, तथापि देश-हित करने की प्रबल प्रेरणा से पुस्तकें लिखकर, बड़े बड़े अधिकारी अङ्गरेज़ों से मिलकर, और समय समय पर व्याख्यान देकर, जो काम यह कर रहे हैं वह जवानों से भी नहीं हो सकता। इस वर्ष (१९०४) अम्स्टरडाम में जो सभा हुई थी उसमें यह भी गये थे। इनके ऋषितुल्य रूप को देख कर इनके खड़े होते ही सारी सभा खड़ी हो गई थी। इस देश की दुर्दशा का जो चित्र इन्होंने वहां खींचा उससे सभासदों का हृदय द्रवीभूत हो गया। इन्होंने "पावर्टी ऐण्ड अन-ब्रिटिश रूल इन इण्डिया" नाम की एक बहुत ही अच्छी पुस्तक लिखी है।

सर फ़ीरोज़शाह मेहता, एम. ए., एल. एल. बी., के. सी. आई. ई., इस बार, कांग्रेस की

स्वागतकारिणी कमिटी के सभापति हैं। आपही पहले दिन, सभासदों का स्वागत करेंगे और अपनी पहली वक्तृता में, कांग्रेस-सम्बन्धिनी भूमिका का भाष्य सुनावेंगे। यह पारसी हैं। पर इस देश में रहनेवाली सब जातियों की प्रतिष्ठा के यह पात्र हैं। बम्बई की हाईकोर्ट के यह प्रधान बैरिस्टरों में से हैं। एक बार वाइसराय के कौंसल के सभासद भी यह रह चुके हैं। आप बहुत बड़े वक्ता हैं; कांग्रेस के बहुत बड़े भक्त हैं; और देश-हित-कारक कामों के बहुत बड़े अभिभावक हैं।

अध्यापक गोपालकृष्ण गोखले, बी. ए., सी. आई. ई. का नाम कौन न जानता होगा? स्वदेशहितचिन्तकों में इनका स्थान बहुत ऊंचा है। तिलक-विभ्राट् के समय ये इङ्गलैण्ड में थे। वहां इन्होंने कुछ अनुचित कह डाला था। इसलिए, यहां आकर, इन्होंने अपनी भूल स्वीकार कर ली, जिससे गवर्नमेण्ट का क्षोभ इन पर से जाता रहा। ये पूना के स्वदेशी फ़र्गुसन कालेज में प्रोफ़ेसर हैं। बहुत कम वेतन लेकर ये वहां विद्यादान देते हैं। देशसेवाही में इन्होंने अपना समय व्यतीत करने का प्रण कर लिया है। अपने प्रान्त से यह वाइसराय के कौन्सल के मेम्बर हैं। ये अपूर्व वक्ता हैं। "यूनीवरसिटी बिल" पास होने के समय इन्होंने कौन्सल में जैसी आवेशपूर्ण वक्तृता दी थी, वैसी आज तक किसी हिन्दुस्तानी से नहीं बन पड़ी। उससे कौन्सल का "हाल" कँप उठा था; बिल को उपस्थित करनेवालों का चेहरा सुर्ख़ हो गया था; और लार्ड कर्ज़न तक से उसका यथोचित उत्तर न बन पड़ा था। इनकी वह वक्तृता एक अजूबा चीज़ है। वह सादर पढ़ने लायक़ है और चिरकाल तक रख० भी छोड़ने लायक़ है। उसके कुछही दिन बाद गवर्नमेण्ट ने इनको सी. आई. ई. कर दिया। बहुत अच्छा हुआ।

मिस्टर दिनशा इदलजी वाचा बम्बई के निवासी हैं। आप पारसी-वंशज हैं। कांग्रेस से आपका उसी तरह का सम्बन्ध है जिस तरह का योगियों का ब्रह्मानन्द से होता है। शायदही कोई कांग्रेस ऐसी हुई हो जिसमें आप उपस्थित न रहे हों। व्यापार-विषयक बातों में आपका तजरुबा बहुत बढ़ा चढ़ा है। आपके बोलने का ढंग ऐसा है कि सुननेवालों के नेत्र आपके चेहरे पर जाकर चिपक से जाते हैं। वक्तृता में, यथा समय, अङ्गविक्षेप करने की कला आपको ख़ूब आती है।

सर विलियम वेडरबर्न बम्बई के गवर्नर के प्रधान सेक्रेटरी थे। इस देशवालों ने विलायत में जो एक समाज संगठित किया है उससे आपका घनिष्ट सम्बन्ध है। आप भारत के इतने शुभचिन्तक हैं कि उसके मंगल के लिए राजनैतिक आन्दोलनों में आपने अपने घरके कोई दो लाख से अधिक रुपये ख़र्च किये हैं।

पार्लियामेंट सभा के सभ्य स्मिथ साहब भी इस बार कांग्रेस में आते हैं। आप भी भारत के बड़े शुभचिन्तक हैं। इस देश में मद्यपान निवारण करने के लिए आपने विलायत में एक सभा बनाई है। आप उसके सभापति हैं।

इस कांग्रेस के साथ जो प्रदर्शिनी होती है उसके, इस बार, दो भाग हैं—एक पुरुषों का, दूसरा स्त्रियों का। पुरुषोंवाले को बम्बई के गवर्नर लार्ड लेमिङ्गटन खोलेंगे और स्त्रियोंवाले को उनकी लेडी साहबा खोलेंगी। स्त्रियों की प्रदर्शिनी एक नई चीज़ होगी। अनेक पारसी और महाराष्ट्र स्त्रियां इस काम में लगी हुई हैं। वही प्रदर्शिनी के लिये चन्दा इकट्ठा कर रही हैं; वही चीज़ें इकट्ठा कर रही हैं। और वही उनको हिफ़ाज़त से रखने और दिखलाने का प्रबन्ध कर रही हैं। ईश्वर करै उनको इस काम में ख़ूब सफलता हो।

अगली कांग्रेस इस प्रान्त में होनेवाली है।

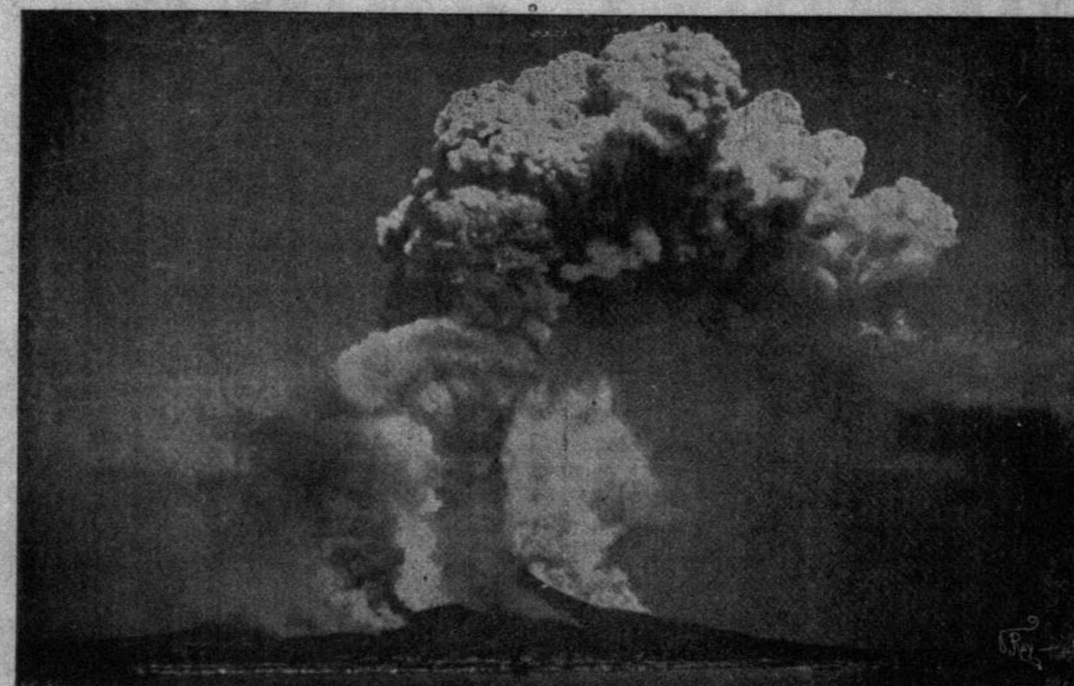

विस्यूवियस।

विस्यूवियस ।

पृथ्वी पहले एक प्रकार का जलता हुआ प्रवाही पदार्थ थी। लोहा और तांबा आदि धातु गलने पर जैसे तरल और अग्निमय हो जाते हैं, पृथ्वी भी वैसी ही थी। वह धीरे धीरे ठंढी हो गई है। उसके पेट में, परन्तु, अभी तक ज्वाला भरी है। पृथ्वी का जो भाग समुद्र के पास है वहां बड़ी बड़ी दरारों से, कभी कभी, पानी का प्रवाह पृथ्वी के जलते हुए पेट में चला जाता है। वहां आग का संयोग होने से पानी की भाफ हो जाती है और वह बड़े वेग से पृथ्वी के ऊपरी भाग को तोड़ कर बाहर निकलने का यत्न करती है। इस प्रकार की भीषण भाफ जब पृथ्वी के उदर में इधर उधर आघात करती है तभी भूकम्प आता है। जहां वह पृथ्वी को तोड़ कर ऊपर निकलने लगती है वहां ज्वालामुखी पर्वत हो जाते हैं। ऐसे पर्वतों के नीचे की भाफ निकल जाने पर वे शान्त हो जाते हैं। जब फिर कभी वहां पानी का प्रवाह पहुँचता है तब फिर वहां की आग कुपित हो उठती है और उत्पन्न हुई भाफ पहले मार्ग से ऊपर निकलने लगती है। इस निकलने में पृथ्वी के उदर के पदार्थ वह ऊपर फेंकती है।

पानी पहुँचने से पृथ्वी के पेट की ज्वाला कहीं कहीं अत्यन्त कुपित हो उठती है, और बटलोही के ढक्कन के समान, पृथ्वी के ऊपरी भाग को वह बलपूर्वक ऊपर उठा देती है। एंडीज़ और आल्प्स् आदि ऊंचे ऊंचे पर्वत इसी प्रकार ऊपर उठ आये हैं। भूगर्भ-शास्त्र के जाननेवालों ने इस बात को सप्रमाण सिद्ध किया है।

जिन पर्वतों में पृथ्वी के ऊपर की उबलती हुई भाफ के निकलने का मार्ग हो जाता है, अर्थात् जिन में भीतर से ऊपर तक, एक विशाल कुवां सा बन जाता है उनसे, कभी कभी, आग की विकराल ज्वाला निकल पड़ती है। ऐसे पर्वतों को ज्वालामुखी अथवा अग्निगर्भ पर्वत कहते हैं।

संसार में जितने अग्निगर्भ पर्वत हैं उन सब में विस्यूवियस बड़ा ही भयङ्कर है। शान्त महासागर के व्यस्ट इण्डीज़ नामक द्वीपों में, उस वर्ष, जो एक ज्वालामुखी का स्फोट हुआ और उससे एक शहर का शहर विध्वंस हो गया, वह विस्यूवियस के हत्कम्पकारी स्फोटों के सामने कोई चीज़ नहीं था। विस्यूवियस, इटली में, नेपल्स की खाड़ी से थोड़ी दूर पर है। उसके चारों ओर घनी बस्ती है। अङ्गूर और शहतूत के बाग़ दूर दूर तक चले गये हैं। तरु, लता, पशु, पक्षी और मनुष्यों से परिपूर्ण, ऐसी मनोहर भूमि के बीच, यह भीम भूधर खड़ा है। समुद्र की सतह से यह कोई ४,००० फुट ऊंचा है।

जिस मुँह से विस्यूवियस ज्वलन्त ईंट, पत्थर, राख, भाफ और धातुरस उगलता है उसकी परिधि ५ मील है! यह अनादि अग्निगर्भ पर्वत है। किसी समय यह एक दूसरे ही मुख से ज्वाला वमन करता था। इस प्राचीन मुख का घेरा नये मुँह से भी बड़ा है। परन्तु इस मुँह ने चिरकाल से मौन धारण कर लिया है। विस्यूवियस की, इस समय, जितनी उँचाई है, प्राचीन समय में वह उससे दूनी थी। परन्तु एक महा वेगवान् स्फोट में उसके सब से ऊँचे शिखर उड़ गये। तब से उसे यह वामन रूप मिला है।

विस्यूवियस कई सौ वर्ष तक शान्त था। जान पड़ता था कि उसकी जठराग्नि मन्द हो गई और वह हमेशा के लिए शिथिल पड़ गया। इसी लिए मनुष्यों ने उसके इर्द गिर्द अनेक बाग़ लगा दिये, अनेक नगर और गांव बसा दिये; यहां तक कि पर्वत के ऊपर उसके ज्वालावाहक मुह तक वे अपनी भेड़ बकरियां चराने के लिए ले जाने लगे। उसके शिखर नाना प्रकार के हरे हरे पेड़ और लताओं से ढक गये। उनको देखकर यह बात कभी मन में न आती थी कि यह अग्निगर्भ पर्वत है।

६३ ईसवी में अकस्मात् भूडोल आया और यूविस्वियस के पेट में फिर, सैकड़ों वर्ष के बाद,

गड़बड़ शुरू हुई। १६ वर्ष तक भूडोल आते रहे और जिस प्रान्त में यह पर्वत था उसके निवासियों के कलेजों को कँपाते रहे। अनेक मकान गिर गये; मन्दिरों के अनेक शिखर टूट पड़े; ऊंचे ऊंचे महल पृथ्वी पर उलटे लेट रहे। आगे आनेवाले तूफ़ान की १६ वर्ष-व्यापी यह एक छोटी सी सूचना थी। मनुष्य-संहारक प्रलय का यह आदि रूप था। भूडोल के धक्के धीरे धीरे अधिक उग्र होते गये। अन्त में २४ आगस्ट ७९ ईसवी को विस्यूवियस का भीषण मुँह, महा भयङ्कर अट्टहास करके, खुल गया। क्षुब्ध हुए समुद्र में जिस प्रकार एक छोटी सी डोंगी हिलती है—एक निमेष में कई हाथ ऊपर उठकर फिर नीचे आ जाती है—स्फोट होने के पहले, उसी प्रकार पृथ्वी हिल उठी। सपाट ज़मीन पर भी जाती हुई गाड़ियां उलट गईं; मकान गिरने लगे और उनके भीतर से मनुष्य भगने लगे; समुद्र किनारे से कोसों दूर हट गया; अनन्त जलचर सूखी ज़मीन में पड़े रह गये! यह हो चुकने पर विस्यूवियस ने अपने पेट के पदार्थ वमन करना आरम्भ किया। प्रलयकाल के मेघ के समान भाफ की घोर घटा हाहाकार करते हुए उसके मुँह से निकलने लगी। ठहर ठहर कर सैकड़ों वज्रपात के समान महाप्रचण्ड गड़गड़ाहट प्रारम्भ हुई। भाफ के साथ राख और पत्थर उड़ने लगे और दूर दूर तक गिर कर देश का सर्वनाश करने लगे। बिजुली इतनी भीषणता से चमकने लगी कि पचास पचास कोस दूर तक के लोगों की आँखों में चकाचौंध आ गई। मुँह के ठीक बीच से जलते हुए धातु और पत्थरों की राशि आकाश की ओर कोसों ऊपर उड़ने लगी। तीन दिन तक आस पास का देश अन्धकारमय हो गया। विस्यूवियस ने महाप्रलय कर दिया। उसके पास के हरक्युलैनियम, पाम्पियाई और स्टेबिया नामक तीन शहर समूल लोप हो गये। उनके ऊपर बीस बीस फ़ुट गहरी बजरी, राख, और पत्थर आदि की तह जम गई। सारे जीवधारियों का सहसा संहार हो गया। विस्यूवियस ने अपने मुँह से इतना भाफ उगला कि उसके चारों ओर महाभयङ्कर और महावेगवान् नद बह निकले और अपने साथ, उस पर्वत के भीतर से निकले हुए राख और पत्थर आदि पदार्थों को बहाकर, उन्होंने बाग़, खेत, गाँव, नगर जो कुछ उन्हें मार्ग में मिला, सब को दस दस पन्द्रह पन्द्रह हाथ ज़मीन के नीचे गाड़ दिया! इस स्फोट में अनन्त प्राणियों ने अपने प्राण खोये।

इसके बाद कोई १५०० वर्ष तक विस्यूवियस प्रायः शान्त रहा। बीच में कभी एक आध बार उसने धीरे से श्वास अथवा डकार लेकर ही सन्तोष किया। इन १५०० वर्षों में इस ज्वालामुखी पर्वत-राज की फिर पहले की सी अवस्था हो गई। सब कहीं लतायें लटक गईं, घास से उसके शिखर लहलहे हो गये, अङ्गूर और शहतूत के उद्यान उसके आस पास उसकी शोभा बढ़ाने लगे। कितने ही गाँव बस गये। यह सब विस्यूवियस से देखा न गया। फिर भूडोल आरम्भ हुआ। छ महीने तक पृथ्वी हिलती रही। १६ दिसम्बर १६३१ ईसवी को फिर उदरस्फोट हुआ। राख और पत्थर के समूह के समूह हृदयविदारी नाद करते हुए उड़ने लगे और सैकड़ों मील दूर जाकर गिरने लगे। यहां तक कि छोटे छोटे पत्थर रूम की राजधानी कान्स्टैंटिनोपल तक पहुँचे!!! भाफ के पानी की प्रचण्ड नदियां बन गईं। उनमें राख पत्थर मिल जाने से कीचड़ हो गया। कीचड़ के ये सर्वग्रासकारी भयावने नद बहे और अपोनाइन पर्वत के नीचे तक चले गये! इस बार गले हुए धातु और पत्थरों की अग्निरूपिणी नदियों के भी प्रवाह बहे, और महा भीषण रूप धारण करके, पशु, पक्षी, मनुष्य, घास, फूस, वृक्ष, लता आदि को भस्म करते हुए बारह तेरह मुखों से समुद्र में आगिरे! इस स्फोट में १८,००० मनुष्यों का संहार हुआ!!!

जब से यह स्फोट हुआ तब से विस्यूवियस को पूरी शान्ति नहीं मिली। बीच बीच में आप आग, पत्थर, भाफ, राख उगलतेही रहे हैं। १७६६,

१७६७, १७७९, १७९४ और १८२२ ईसवी में आपने विशेष पराक्रम दिखाया।

१७९४ ईसवी के स्फोट में पिघले हुए पत्थरों की एक धारा विस्यूवियस ने निकाली। वह १२ से ४० फुट तक गहरी थी। टोरी डल ग्रेको नामक नगर को तबाह करके वह ३५० फुट तक समुद्र में चली गई। समुद्र में प्रवेश के समय वह १,२०० फुट चौड़ी थी। १८२२ ई० के स्फोट में धुंवें के विशाल स्तम्भ १०,००० फुट तक आकाश में उड़े। १८५५ में चट्टानों के टुकड़े ४,००० फुट तक ऊंचे उड़े और स्फोट के समय ऐसी घोर गड़गड़ाहटें हुई कि लोगों का कलेजा काँप उठा और वे सब नेपल्स को भग गये।

कुछ दिन से विस्यूवियस की ज्वाला-वमन करने की शक्ति क्षीण सी हो गई थी। परन्तु यह क्षीणता जाती रही है। अब फिर आपने विकराल रूप धारण किया है। फिर आप आग, पानी, ईंट, पत्थर बरसाने लगे हैं। यह अद्भुत तमाशा देखने के लिए दूर दूर से लोग नेपल्स को जा रहे हैं। विस्यूवियस के पास एक यन्त्रशाला स्थापित है। वहां इसकी अग्निलीला की दिनचर्य्या रक्खी जाती है और जो जो दृश्य दिखलाई पड़ते हैं उनका वैज्ञानिक विचार किया जाता है। १८८० ईसवी से, वहां, तार के रस्सों की रेल निकाली गई है। यह रेल विस्यूवियस के मुख से १५० गज़ तक चली गई है। इसी रेल पर लोग इस ज्वलन्तदेव के दर्शन करने जाते हैं।

हरक्युलैनियम और पाम्पिपाई, जिनको विस्यूवियस ने ६५ हाथ पृथ्वी के नीचे गाड़ दिया था और बहुत ढूंढ़ने पर भी जिनका कोई निशान नहीं मिलता था, अब ज़मीन से खोद कर निकाले गये हैं। हरक्युलैनियम एक छोटा सा नगर है; परन्तु पाम्पिपाई बहुत बड़ा है। एक कुवां खोदते समय पाम्पिपाई का पहले पहल १७४८ ईसवी में पता लगा। तब से बराबर उसकी खुदाई और खोज हो रही है। विस्यूवियस से यह कोई एक ही मील दूर है। उसके मकान, उसके मन्दिर, और उसकी नाटकशालायें आदि इमारतें सब जैसी की तैसी निकली हैं। उनमें रक्खा हुआ सामान भी बहुत सा निकला है। मनुष्यों की ठठरियां भी पाई गई हैं। १८०० वर्ष के पहले रोमन लोगों के इतिहास को पाम्पिपाई ने प्रत्यक्ष कर दिया है। इस पर अनेक पुस्तकें लिखी गई हैं और अब तक लिखी जा रही हैं। इनमें लिखे गये वर्णन बहुतही मनोरञ्जक हैं। उस समय इटलीवालों के मकान कैसे थे; उनके रहने की रीति कैसी थी; उनके घरों में किस प्रकार का सामान रहता था; उनके आमोद प्रमोद किस प्रकार के थे—इत्यादि बातों का पता पाम्पियाई से ख़ूब लगा है। कभी कभी बुराई से भी भलाई निकलती है। विस्यूवियस के स्फोट से यदि पाम्पिपाई दब न जाता तो प्रायः दो हज़ार वर्ष पीछे अपने पूर्वरूप में वह क्यों दिखलाई देता?

जापान की स्त्रियां।

प्रशान्त महासागर में कई एक द्वीप मिलकर जापान कहलाते हैं। जापान की राजधानी टोकियो है। सब द्वीप हमारे मदरास हाते से कुछ बड़े होंगे। उनका विस्तार १,५०,००० चौरस मील है। जापान ने कलाकौशल में, व्यापार में, विद्या में, समाजिक सुधार में, युद्ध और समुद्रयान-विद्या में आश्चर्य्य-कारक उन्नति की है। यह सब उन्नति उसने कोई पचास ही साठ वर्ष में कर डाली है। इस समय, एशिया में, जापान बड़ा शक्तिशाली राज्य है। वहां कलाकौशल सीखने के लिए इस देश से, प्रति वर्ष, दो एक युवा पुरुष जाते हैं। अंगरेज़ भी वहां युद्धविद्या सीखने जाने लगे हैं।

जापानियों का रङ्ग कुछ पीलापन लिए हुए होता है। उनके बाल काले और सीधे होते हैं; डाढ़ी के बाल बहुत नहीं बढ़ते। गालों की हड्डियां उभड़ी

हुई होती हैं। जापानी कुछ ठिँगने होते हैं। पुरुषों की अपेक्षा जापानी स्त्रियां अधिक रूपवती होती हैं। उनका रङ्ग गोरा होता है; गाल कुछ ललाई लिए होते हैं; मुँह छोटा और सुन्दर होता है। सिर के बालों को वे बड़ी ख़ूबसूरती से बाँधती हैं। कोकिला के समान उनकी मीठी वाणी और बात चीत करने का उनका तर्ज़ चित्त को लुभानेवाला होता है।

एक जापानी महिला।

जापानवाले बहुत ढीले ढाले कपड़े पहनते हैं। परन्तु स्त्रियों के वस्त्र चुस्त होते हैं; वे बदन से सटे रहते हैं। स्त्रियों के घांघरे पैर के गुल्फ-गुठुवे-तक लम्बे होते हैं। एक फुट भर का चौड़ा कपड़ा कमर से बाँधकर उसे वे बदन पर डाल लेती हैं; और पीछे एक बड़ी सी गाँठ दे देती हैं। उसके दोनों-छोर नीचे को लटका करते हैं। उनके ओढ़ने और पहनने के कपड़े इतने अधिक होते हैं कि चलते समय जान पड़ता है कि जापानी स्त्रियां आगे को झुकी हुई हैं। वे अपने बालों की बड़ी सेवा करती हैं; और उनको भाँति भाँति से अलङ्कृत करती रहती हैं। किसी किसी के बाल इतने लम्बे होते हैं कि वे बढ़ कर पैरों तक की ख़बर लेते हैं। स्त्रियां बालों का गुच्छ बनाकर आगे ऊंचा कर देती हैं और पीछे से उनको बांधती हैं। जूड़े में वे बहुधा फूल गूंधती हैं। धनवानों की स्त्रियां सोने की पिनों—सुइयों—को लगाकर बालों की गाँठ बांधती हैं। कोई कोई पिनें रत्न-जटित होने के कारण बहुत क़ीमती होती हैं। स्त्रियां परदा नहीं करतीं। बिना परदे के, मुँह और सिर खोले हुए, वे बाहर निकलती हैं। एक बार के शृङ्गार किये हुए बाल आठ आठ दस दस रोज़ तक वैसे ही रहते हैं; बिगड़ने नहीं पाते। स्त्रियां, रात को, गरदन के नीचे एक लकड़ी की तकिया रखकर सोती हैं। इस तकिये के पीछे बाल लटका करते हैं। इस तरह, उनकी बनावट नहीं बिगड़ती।

जापानी लोग स्त्रियों को उच्च शिक्षा देने के बड़े पक्षपाती हैं। स्त्री-शिक्षा का वहां बहुत प्रचार है। इस देश में यदि १०० में १ लड़की मदरसे पढ़ने जाती है तो जापान में १०० में २० लड़कियां मदरसे जाती हैं। स्त्रियों में, वहां, अनेक कवि, चित्रकार, अध्यापिका और सम्पादक हैं। हज़ारों पुस्तकें स्त्रियों ने बनाई हैं। जापान में, पुरुष जैसे समाज का सुधार करने में सङ्कोच नहीं करते, वैसे स्त्रियां भी सङ्कोच नहीं करतीं। जो पुरानी रीतियां हानिकारिणी अथवा निरर्थक हैं उनको वे छोड़ देती हैं और नई नई अनुकूल रीतियों को स्वीकार कर लेती हैं। जापान के बड़े बड़े प्रतिष्ठित पुरुष और अधिकारी अपनी अपनी स्त्रियों के साथ बाहर निकलते हैं; सभाओं में जाते हैं; और योरप तथा अमेरिकावालों से भी सस्त्रीक मिलते हैं।

जापान यद्यपि योरपवालों की सभ्यता की प्रतिदिन नक़ल करता जाता है, तथापि वहां की

स्त्रियां स्वतन्त्र नहीं हैं। वे अपने पति के कुटुम्बियों का बड़ा आदर करती हैं; पति को तो वे स्वामी क्या, देवता के तुल्य, समझती हैं। हमारे देश के समान जापान में भी स्त्रियों को, हर अवस्था में, दूसरों के आधीन रहने की शास्त्राज्ञा है। लड़कपन में वे अपने माता पिता की आज्ञा में रहती हैं; विवाह होजाने पर वे पति की आज्ञा में रहती हैं; और विधवा होजाने पर वे पुत्र की आज्ञा में रहती हैं। वे अपने पति की हृदय से सेवा करती हैं; पति जब घर से कहीं बाहर जाता है तब मस्तक झुकाकर उसको वे प्रणाम करती हैं; और भोजन के समय सदा उसके पास वे उपस्थित रहती हैं।

जापानी लड़के जब घर से कहीं जाते हैं या कहीं से घर को वापस आते हैं, तब जाने या आने के लिए वे अपनी मां से प्रणाम-पूर्वक आज्ञा मांगते हैं। जब मां कहीं बाहर से घर आती है तब सब लड़के द्वार पर आकर सिर झुकाते हुए उसका स्वागत करते हैं।

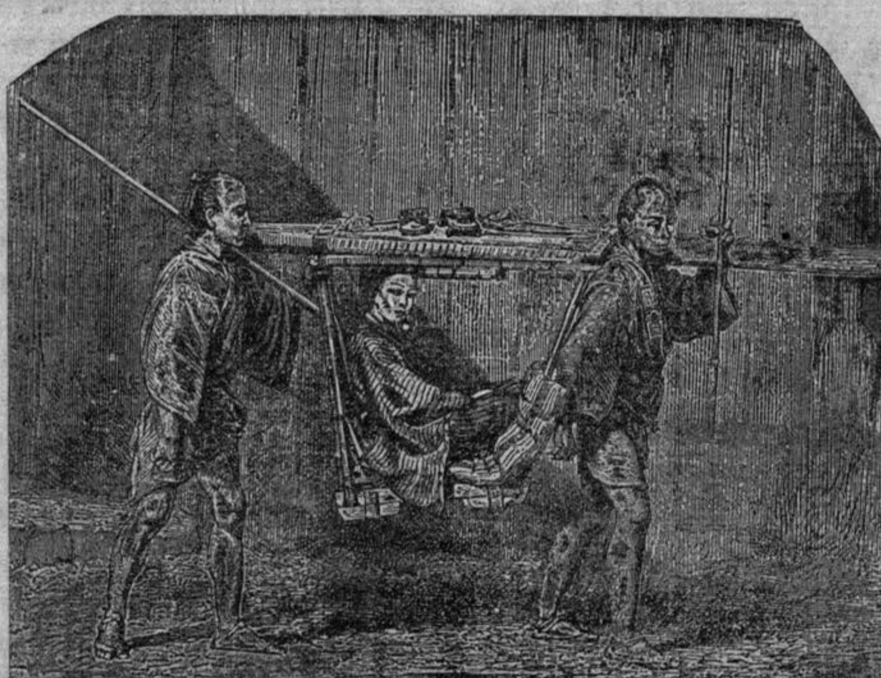

जापानी डोली।

बिजुली*।

इस हरे भरे, उपजाऊ, विशाल भारत-वर्ष के एक प्रान्त में एक रेतीला, उजाड़ और दुर्गम मैदान पड़ा हुआ है जिसे लोग मरुस्थल वा रेगिस्तान कहते हैं। यह रेगिस्तान सिन्धु नद के दक्षिणी अंश से उत्तर को ओर छोटी बड़ी नद नदियों से शोभित पञ्जाब के छोर तक, और पूर्व की ओर राजपुताने के पहाड़ी देशों के पार तक

* एक अमेरिकन कहानी की छाया।

नीरस और भयावने रूप से फैला हुआ है। अकबर बादशाह का पिता हुमायूं शेरशाह के प्रताप से भागता हुआ इसी मरुभूमि में जा पड़ा था और उसे वहां जो जो कठिनाइयां झेलनी पड़ीं थीं, इतिहास जाननेवालों को वह कथा भली भाँति विदित है। यहीं पर प्यासे हरिणों के झुण्ड धूप में चमकती हुई बालू को दूर से नदी की धारा समझ कर उसकी ओर दौड़ते दौड़ते प्राण दे डालते हैं। इन्हीं प्यासे हरिणों की दुर्दशा को देखकर पुराने कवीश्वरों ने सांसारिक जीवों की दुराशा की उपमा मृगतृष्णा से दी है।

इस मरुभूमि की दक्षिण दिशा में अरावली श्रेणी की कई छोटी बड़ी पहाड़ियां दौड़ दौड़ कर, विन्ध्याचल के शिखरों को साष्टांग दण्डवत सा कर रही हैं। बिजुली नाम का एक मनुष्य इन्हीं पहाड़ियों में कहीं पर एकान्तवास करता था। उसकी जीविका शिकार से होती थी। नहीं मालूम वह कब, कहां से आकर, वहां बसा था। उस स्थान में दूर दूर, कई कोसों तक, मनुष्य का नामो-निशान तक नहीं था। पूर्व और उत्तर की पहाड़ियों पर भील लोगों की दो चार छोटी छोटी बस्तियां थीं। ये जङ्गली भील स्वभाव ही से क्रूर और निर्दयी थे। ब्रिटिशसिंह के पराक्रमी नाद को, जिस समय की कथा मैं लिख रहा हूं उस समय तक, उन्होंने नहीं सुना था। मन मानी लूट मार करके, दूर दूर के रजवाड़ों और पहाड़ी रास्तों में, उन्होंने गड़ बड़ मचा रक्खा था। परन्तु ये बनैले भील बिजुली से दूर भागते थे। उससे वे कभी छेड़ छाड़ करने का साहस नहीं करते थे। सम्भव है कि कभी बिजुली के पराक्रम से उन्हें धोखा खाना पड़ा हो। परन्तु ऐसा भी सुना गया है कि बिजुली जिस पहाड़ी में रहता था, किसी कारण से, भय मानकर, निर्भय भील भी वहां नहीं जाते थे। लोग कहते हैं कि उस समय वहां पर कोई चुड़ैल वा राक्षसी रहती थी जो भीलों से वैरभाव रखती थी। बिजुली को वे लोग मन्त्रज्ञानी समझते थे, क्योंकि जहां पर दूसरा भील जाने का साहस नहीं करता था, वहां बिजुली अकेला बेरोकटोक निर्द्वन्द रहता था। वह कभी किसीसे बोलता नहीं था; उसके मन की कथा, उसका इतिहास, कोई नहीं जानता था; और न कोई उससे पूछने का साहस ही करता था।

बिजुली इस एकान्त जङ्गली पहाड़ी में अकेला नहीं था। उसके जीवन की सङ्गिनी एक स्त्री भी थी। उसका नाम हमने मैना सुना है। बिजुली स्वयं काला, लम्बा और कुरूप था; परन्तु उसकी सङ्गिनी का रंग उससे बहुत साफ़ था; और यदि वह नगर में, सभ्य समाज में, रहती तो स्वरूपवती नहीं तो वह कुरूपा भी नहीं समझी जाती। और, यों तो बड़ी रूपवती भी यदि जङ्गल में रहे, रूखे सूखे भोजन और मैले कुचैले वस्त्रों ही से उसे सन्तोष करना पड़े,—तिस पर, शरीर की सेवा भी जैसी चाहिए वैसी न हो,—तो उसका स्वाभाविक रूप घनघटाच्छन्न चन्द्रमा की तरह मलिन होही जाता है। बिजुली-मैना में बड़ा प्रेम था। दोनों एक दूसरे से कभी अलग नहीं होते थे। जो कभी हरिण के शिकार में बिजुली दो एक दिन के लिए बाहर जाता तो वह मैना को भी एक टट्टू पर सवार कराकर ले जाता। दोनों स्त्री-पुरुष एकही साथ उस सूनसान रेतीले मैदान में पशु मार कर प्रेम से बिचरा करते।

गृहस्थी की दूसरी साधारण वस्तु, कपड़े लत्ते, आदि का संग्रह बिजुली कभी कभी नगर की ओर जाकर कर लाता था। वह नगर में जाकर आखेट से पाई हुई पशुओं की खाल, मोरों के पङ्ख इत्यादि बेचता था, और उनके बदले अपनी आवश्यकीय वस्तुओं को मोल लेकर अपने पहाड़ी घर को ले आता था। कुछ दिनों से उसने एक नया व्यापार आरम्भ किया था। उसने दो घोड़ियां पाल रक्खी थीं—उनसे जो बच्चे पैदा होते थे, उनसे उसे अपने निर्वाह के योग्य धन मिल जाता था। पहाड़ी पर घोड़ों के लिये चारे की कमी न थी। और और भीलों की तरह उसका स्वभाव दुष्ट नहीं था;

परन्तु यह भी नहीं ज्ञान पड़ता था कि वह भील था या कोई ग्रौर। वह चाहे जिस जाति का रहा हो, इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह किसी गूढ़ कारण से इस भाँति जङ्गली पहाड़ों में रहता था। चाहे ग्रौर कोई कारण न रहा हो; परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि मैना का प्रेमही उसे इस एकान्त वास में ले ग्राया था। यह प्रेम बड़ा गहरा था, इसमें भी कोई सन्देह नहीं। मैना का प्रेमही उसे ग्रवश्य इस दुर्गम ठौर पर ले ग्राया होगा; क्योंकि मैनाही उसका ध्यान, मैनाही ज्ञान, मैनाही उसके जीवन की ग्राधार हो रही थी।

भारतवर्ष में ग्रँगरेज़ों का प्रतापसूर्य उस समय तक उदय नहीं हुग्रा था। ग्रँगरेज़ों की एक कोठी सूरत में नई नई खोली जा रही थी। ग्रँगरेज़ उस समय वीररव से सिंहनाद नहीं करते थे; वे शान्तिमय बनिये व्यापारियों की तरह भारत के नवाब ग्रौर राजाग्रों के कृपाकटाक्ष के भिखारी मात्र थे। परन्तु उनसे पहले पोर्टुगीज़ लोगों ने भारतसमुद्र के पश्चिमी तट पर ग्रपना ग्रड्डा जमा लिया था। ग्राजकल जैसे ग्रँगरेज़ पादरी हमलोगों को ग्रँधेरे से उजियाले में लाने के लिए चौराहों पर धर्म्म-व्याख्यान दिया करते हैं, उस समय पोर्टुगीज़ पादरी लोग बादशाह से ग्राज्ञा लेकर गोवा के ग्रास पास, कई नगरों में, गिर्जाघर बना कर लोगों को नरक से बचाने की चेष्टा करते थे। बहुत से पादरी पवित्र-हृदय भी थे; परन्तु ग्रधिकांश पादरी ग्रौर व्यापारी फ़िरङ्गी, लोगों को किरिस्तान बनाने की सुगमता न पाकर, नीच जाति की स्त्रियों के समागम से किरिस्तानों की एक नई जाति का जन्म दे रहे थे।

ऐसेही एक पोर्टुगीज़ व्यापारी के पास एक दिन बिजुली-मैना ग्रपना बनिज लेकर ग्राये। बिजुली पहले भी कई बार साहब के पास खाल बेच गया था। परन्तु साहब की दृष्टि ग्रब तक मैना पर नहीं पड़ी थी। उस समय उसके पास दो नीच जाति की काली मेमें थीं। परन्तु मैना के सुन्दर नेत्रों ने ग्राज उसके चित्त को विकल कर दिया। मैना को वश में लाने के लिए उसने कई यत्न किये; परन्तु मैना की पवित्रता के ग्रागे उसकी एक भी चाल न चली। साहब हिन्दुस्तानी स्त्रियों की पवित्रता को क्यों भला कोई चीज़ समझने लगा; इससे उसने मैना को वशीभूत करने की एक निराली ही चाल निकाली। उसने भोलेभाले बिजुली को बहुत सी खालें एक नियत समय के भीतर ले ग्राने को राज़ी करा लिया, ग्रौर उसे समझा बुझाकर मैना को नगरही में छोड़ जाने के लिए कहा। बिजुली, जिसे साहब की चालाकी कुछ भी न सूझी, जल्दी में, मैना को बिना कहेही वहां से ग्रपने पहाड़ी घर की ग्रोर, घोड़े पर सवार होकर, चल दिया। मैना को उसे सावधान करने का समय ही न मिला।

पहाड़ी देश के पूर्व ग्रोर एक घाटी में बड़ाही सुन्दर, वृक्ष लताग्रों के कुञ्जों से शोभित, पथिकों का श्रम हरनेवाला, कवियों का मन लुभानेवाला एक उपवन है। वहां पर खौलते हुए पानी से भरा हुग्रा एक छोटा सा कुण्ड है। राही बटोही या जङ्गली भील, जो वहां जाते हैं, कुछ काल के लिए उस कुण्ड के किनारे बैठकर ग्रपनी थकावट दूर कर लेते हैं; ग्रौर परमात्मा के कौशल को देखकर ग्रपने नयन सफल करते हैं। इस कुण्ड का जल बड़ा गुणकारक है; इससे लोग उसे पीकर उसमें दो चार कौड़ियां भेंट की भांति छोड़ देते हैं। यह रीति बहुत काल से चली ग्राती है।

इस कुण्ड के किनारे, एक दिन, वैशाख के दोपहर में, एक शिकारी बैठा हुग्रा था। उसकी पीठ पर तीर कमान, कमर में लाल कमरबन्द ग्रौर सिर पर घुँघराले भूरे केश थे। दूर से देखने से जान पड़ता था कि वह साक्षात् यमराज का ग्रवतार राहिग्रों की राह देखता हुग्रा बैठा हुग्रा है। परन्तु देखने में कुरूप होने पर भी उसकी विशाल देह, लम्बी नाक, बड़ी बड़ी ग्राँखें, गम्भीर मुख ग्रौर शरीर के दूसरे ग्रवयव, उसे एक निराली

ही शोभा से सज्जित कर रहे थे। एकाएकी देखने वाला राही उसे भील समझकर दूर भाग जाता; परन्तु कोई अनुभवी यदि पास से उसके गम्भीर मुख की छटा के देखता ते उसके मन में सन्देह होता कि यह भील नहीं है। उसकी जाति का ठिकाना लगाना वास्तव में कठिन था। दृढ़ता और साहस से भरे हुए उसके मुख और नेत्रों का भाव यही कहता था कि वह पुरुष निस्सन्देह किसी समय में अच्छी दशा में रहा होगा, अथवा वह कोई साधारण भील न होगा।

आखेट के परिश्रम से थककर, दोपहर की धूप से आर्त्त बिजुली कुण्ड के किनारे हरे मखमल के समान घास पर बैठा था। उसने अपने झोले के उतारकर धर दिया था, और उसमें से कुछ कौड़ियां निकालकर कुण्ड में चढ़ाने के लिए बिन रहा था। कौड़ियां एक एक करके खैालते हुए जल में डूब गईं; परन्तु तुरन्तही उबलते हुए सोते के वेग से फिर ऊपर के फेंक दी गईं। कुण्ड के देवता ने माने बिजुली की भक्ति भरी भेंट स्वीकार नहीं की। बिजुली का मन इससे घबरा गया। यद्यपि वह भीलों से अधिक सभ्य और बुद्धिमान था, तो भी कौड़ियों के जल पर लौट आने से उसका मन चञ्चल हो उठा। एकाएकी यदि बीस पचीस भील आकर उसे घेर लेते और उसे मार डालने की चेष्टा करते, ते वह इतना भयभीत न होता, और उनके भयङ्कर चिल्लाने के सुनकर वह बड़ी घृणा से गर्ज उठता। परन्तु अभागा मनुष्य दैव के विपरीत क्या कर सकता है। बिजुली का हृदय एक हाथ भीतर धँस गया।

मरने या और किसी विघ्न से वह कभी नहीं डरता था। परन्तु एक और जीव का जीवन उसके जीवन से लिपटा हुआ था। इस समय उसीकी याद बिजुली के मन के डांवाडोल करने लगी। उसकी आँखों के सामने अँधेरा सा छा गया; मैना का भयभीत मुख माने कुण्ड के भीतर से उसकी ओर बड़े चाव से देखने लगा। भय का मारा वह प्रेमी बिजुली की तरह उछलकर खड़ा हो गया, और फिर टकटकी बाँधकर कुण्ड में देखने लगा। परन्तु मैना की छाया अब वहां नहीं थी। कुण्ड एक क्षण के लिए शान्त हो गया। उसके तले पानी के नीचे कौड़ियों का ढेर साफ़ दिखाई पड़ने लगा। उसके मन में चिन्ता की तरङ्गें बड़े वेग से लहराने लगीं। वह बहुत घबरा उठा। एक क्षण भर और,—और बिजुली ने मनसूबा पक्का कर लिया। उसने ज़ोर से सीटी बजाई, और उसका घोड़ा, जो कहीं पर चर रहा था, दौड़कर उसके पास आ पहुंचा। बिजुली ने अपनी सब चीज़ वस्तु किसी भाग्यशाली राही के लिए वहीं छोड़ दी, और आप, झटपट घोड़े की पीठ पर सवार होकर, तीर के समान दक्षिण की ओर दौड़ा।

हाय, आज राह कितनी लम्बी हो गई है। रात दिन दौड़ते दौड़ते बीता, परन्तु नगर का अब तक पता नहीं। बड़े धीरज से अपने मन की लगाम खींचकर, अन्त में, वह नगर में पहुंचा। साहब बहादुर की कोठी सदा सिपाहियों से रक्षित रहती थी; सिपाहियों ने आज उसे भीतर जाने से रोक दिया। बहुत पूछपाछ करने पर भी किसीने मैना का हाल न बताया। जब वह उदास होकर, कोठी से थोड़ी दूर, एक पेड़ के नीचे खड़ा खड़ा सोच रहा था कि अब क्या करना चाहिये, तब एक बुढ़िया स्त्री ने उससे धीरे से कह दिया कि मैना कई दिन हुए यहां से चली गई है। यह सुननाही था कि बिना सोचे विचारे, वह, घोड़े पर चढ़, फिर तीर की तरह उत्तर की ओर दौड़ा।

इतने दिन जिस ठौर निर्द्वन्द सुख से बीत चुके थे, उस शान्ति कुञ्ज की, उस निर्मल प्रेम के मन्दिर की राह आज की भांति पहिले कभी इतनी दूर नहीं जान पड़ी थी। अहा, मन में भय की कराल छाया से अन्धेरा रहने पर भी बिजुली अब भी अपने पहाड़ी घर में सुख का सपना देख रहा था। ऊंचे नीचे टीलों पर चढ़ते उतरते हुए अन्त में वह उस घाटी में पहुँचा जहां उसने अपना घर बनाया था।

सब कुछ ठीक उसी भांति शान्त चुपचाप देख पड़ा जैसा कि वह छोड़ गया था। और जब एक झरने के किनारे जङ्गली लताओं के एक कुञ्ज के पास मैना की प्यारी मूर्त्ति उसे देख पड़ो, उसका हृदय कूद कर कण्ठ में चढ़ आया। मैना चुपचाप बैठो थी; उसके शरीर के सब अवयव मानो पत्थर के हो गये थे। उसकी निष्पन्दता को देखकर बिजुलो ने जान लिया कि कुछ अनहोनी घटना अवश्य हो गई है। घोड़े के खुरों की आहट उसके कानों तक न पहुँची। और जब, अन्त में, उसकी दृष्टि अपने पति के मुख पर पड़ी, तब भी वह मिट्टी के खिलैाने की तरह बैठी बैठो उसकी ओर देखती ही रही; उसने यह न जाना कि कैान पास आकर खड़ा है। कुत्तों के चार पांच बच्चे पास हो आपस में खेल रहे थे; वह उन्हीं की लीला टकटकी बान्धकर देखने लगी। जब ये बच्चे लता कुञ्जमें एक ओर से दूसरी ओर कूद कूद कर छिप जाते, तब मैना एक उदासी से भरे हुए स्वर से अपने प्यारे गीतों को एक आध कड़ी गाने लगती। उन गीतों में न सिर था न पैर; जहां से मन में आया, बिना अर्थ के, बिना भाव के, उन्हें वह गाने लगती। बिजुली ने उसके कन्धे पर हाथ रक्खा; परन्तु तब भो उसने उसे नहीं पहचाना। उसकी सुध बुध सब चली गई थी। उसके कोमल हृदय पर कोई बड़ी भारी चोट लग चुकी थी जिसके घाव ने उसे पागल बना दिया था। बिजुली ने अपनो प्यारी का—जिसके लिये उसने घर बार, देश, परिवार, सब त्यागकर इस वनवास को स्वीकार किया था; जिसे लेकर उसने, ऐसे दुर्गम ठैार में भी, सब पिछले दुःखों को बिसराकर, अपना जीवन बिताने का मनसूबा ठान लिया था;—निर्दय दैव की लीला से उसने अपनी उसी प्रियतमा का यह भाव देख कर बड़ी भारी कठिनाई से अपने धड़कते हुए कलेजे को धर दबाया; और उसके पास बैठ कर वह उसकी टूटी फूटी रागिनी के अक्षरों को बड़े ध्यान से सुनने लगा। कुछ देर बाद उसके कान में जो शब्द पहुंचे उनसे उसके शरीर में बिजुली की शिखा सी दैाड़ गई। वह उछल कर खड़ा हो गया। उसके सिरमें चक्कर आने लगा। वह फिर भूमि पर बैठ गया। सारा जगत् उसके नेत्रों के सामने अँधेरे से भर गया। परन्तु उसकी इस दुर्दशा को देखकर उन्मादिनी की निर्जीव उन्मत्तता भी सजीव हो गई। उसने अपने प्राणपति को उसी क्षण पहचान लिया, और एक भयावने और दुःखभरे स्वर से एक बार चिल्ला कर उसने बिजुली की कमर से एक लम्बी छुरी खींच कर उसकी पैनी नोक को ज़ोर से अपने हृदय में गाड़ दिया। उसकी लोहू लुहान लोथ उसके प्राणपति के पैरों पर लोटने लगी!

बिजुलो के मन की दशा का वर्णन असम्भव है। उसने मानो कोई डरावना स्वप्न देखा था। सुख से भरे हुए अपने घर को इस भांति अकस्मात् उजड़ते देख कर उसकी आत्मा भय से, विस्मय से, सूख गई। उसकी आशा की पिटारी, उसके जीवन का आधार, उसके प्रेम का चमकता हुआ तारा अनन्त अपार अन्धेरे में बिला गया। और इस अकथनीय हानि का कर्त्ता—इस यमलीला का नायक—कैान था? वही विश्वासी मित्र जिसके भरोसे वह अपने हृदय के अनमोल रत्न को छोड़ आया था?

घण्टों बीत गये और वह अभागा प्रेमी निश्चल गूंगा पत्थर सा वहीं बैठा रहा। अब तक दुख की राख में दबी हुई उसकी चिन्ता भीतर ही भीतर सुलग रही थी; कुछ देर में वह अकस्मात् सुलग कर जल उठी। उस दहकती हुई ज्वाला की शिखाएं उसके दोनों आंखों से फूट कर निकलने लगीं। किसो नई चेष्टा ने उसके मन को चञ्चल कर दिया। वह तुरन्त एक दूसरी ही प्रकृति का मनुष्य हो गया। एक क्षण हीं भर में उसका हृदय, उसकी आत्मा, उसका स्वभाव, सब—मानो किसी जादूगर के जादू के प्रभाव से—बदल गये। अब तक वह एक शान्त-स्वभाव का अनुभवी जीव था; परन्तु इस समय उसकी प्रकृति अपने पड़ोसी भीलों से भी अधिक क्रूर हो गई।

ऊपर कही हुई घटना के दो दिन पीछे पोर्चुगीज़ व्यापारी गढ़ी के समान रक्षित अपनी कोठी में, रात्रि के समय, एक कमरे में सुख से सो रहा था। उसके पैरों के पास, एक काला, जङ्गली भील सा पुरुष, तीर कमान बाँधे, बैठा हुआ, चुपचाप उसके मुख को टकटकी बांधकर देख रहा था। कोठी के चारों ओर सन्त्री लोग बड़ी चौकसी से पहरा दे रहे थे। परन्तु उन सबों की आँख बचाकर, वह पुरुष साहब के पास आ पहुंचा था।

कुछ देर वह यों ही चुपचाप अपने शत्रु की ओर देखता रहा। फिर बड़ी सावधानी से धीरे धीरे वह उसके सिरहाने के पास आया। उसने अपनी छुरी को निकाल कर दांतों में दबा लिया और कूदकर साहब की छाती पर वह चढ़ बैठा। एक हाथ से उसने एक कपड़े का टुकड़ा उसके मुखमें ठूस दिया, और दूसरे से उसकी गति को रोक कर, बड़ी फुर्ती से, एक रस्सी लेकर उसके हाथों को कमर से कस कर उसने बांध डाला। पोर्चुगीज़ ने थोड़ी देर तक छुटकारा पाने के लिये बहुत ज़ोर मारा। परन्तु चूहा जैसे एक बार बिल्ली के पञ्जों में पड़कर नहीं बच सकता, उसी भांति उसकी भी सब चेष्टाएं विफल हुईं। मुखमें कपड़ा भरा रहने से वह चिल्ला कर किसीको बुला न सका। अब बिजुली ने उसे पैरों के बल खड़ा किया; उसके मुख और हाथ पैरों को फिर कसकर बांधा; और उसके शरीर से बँधी हुई रस्सी के छोर को थाम कर, लटकते हुए पंखे की सहायता से छत पर पहुंच, छप्पर को काट, वह ऊपर चढ़ गया; और रस्सी को खींचकर अपने जाल में फँसे हुए शिकार को भी अपने पास खींच कर उसने चढ़ा लिया। शहरों में रहनेवाले लोगों ने बँगलों की छतों पर धुआं निकलने के लिये चिमनियां देखी होंगी। बिजुली चिमनी के पास ही छप्पर काटकर ऊपर चढ़ा था। अब उसी चिमनी की आड़ में अपने शिकार को रख कर, खड़ा होकर, उसने चारों ओर अच्छी तरह देखा। कोठी के सब छप्पर फूस के थे। अब बिजुली फिर कमरे में उतर गया, और एक तीर हाथ में लेकर उसे जांच कर देखने लगा। इस तीर में परों की जगह तेल में भीगे रुई के फाहे लगे थे। बिजुली ने रुई को कमरे में जलते हुए लम्प से जला लिया और फिर छप्पर पर चढ़ कर जलते हुए तीर को कमान में चढ़ाकर एक छप्पर पर चला दिया। क्षण भर में छप्पर जल उठा। प्रकृतिके काले पर्दे पर चमकती हुई लाली पुत गई। अग्निदेव ने अपनी लपलपाती हुई जिह्वाओं से कोठी भर को देखते ही देखते चाट लिया। सन्त्री लोग दौड़ दौड़ कर उसकी गति रोकने की चेष्टा करने लगे। पर कुछ न हो सका। थोड़ी देर में पोर्चुगीज़ व्यापारी का सब माल मत्ता भस्मीभूत हो गया।

परन्तु वह व्यापारी अब तक नहीं जानता था कि उसका परिणाम क्या होगा। जिस समय उसके नौकर चाकर दौड़ दौड़ कर बँगले के दूसरी ओर आग बुझाने में लगे थे, बिजुली ने अपनी ओर सून पाकर फिर रस्सी की सहायता से अपने शत्रु को कोठी के बाहर उतारा और आप भी कूद कर उसके पास आया। तब, जैसे कोई छोटे बच्चे को अनायास अपनी पीठ पर चढ़ा लेता है, उसी भांति उसने साहब को भी अपनी पीठ पर लाद उसे पास हो, जहां वह अपने दो घोड़ों को बांध आया था ले गया।

* * * * * *

अहा, यह क्या खेल हो रहा है? पाठक, देखिए देखिए,—उस मरुभूमि में, सूनसान, जीव मात्र से रहित, गरम रेत से ढके हुए, गरम वायु से झुलसे हुए, उस विस्तीर्ण रेगिस्तान में यह क्या वीभत्स दृश्य देख पड़ता है? देखिए, यह वही कामी पोर्चुगीज़ व्यापारी का गोरा शरीर अपने दोनों हाथों से एक काली स्त्री को अपने हृदय से लगाए हुए, घोड़े पर सवार हो कर, दौड़ रहा है। स्त्री को उसने हाथ से पकड़ रक्खा है?—नहीं, नहीं, उसके दोनों हाथ उसका सारा शरीर, स्त्री की देह से बंधे हैं। उसके दोनों पैर घोड़े के पेट से कसकर बंधे हुए हैं; और

स्त्री,—यह उसी अभागिनी मैना की लोथ है। पोर्टुगीज़ भय से, घृणा से, थकावट और भूख प्यास से स्वयं मुर्दा सा देख पड़ता है। उसकी देह पर मैना की लोथ अब सड़ सड़ कर गिरने लगी है। दुर्गन्ध से उसके प्राण निकल रहे हैं। परन्तु बस कुछ नहीं।

और बिजुली? बिजुली कहां है? इस बीभत्स रीति से अपने शत्रु से बदला लेकर उसका क्रोध अब तक शान्त नहीं हुआ। देखिए, वह भी एक दौड़ते हुए घोड़े पर चढ़ कर हाथ में चाबुक उठाये हुए पोर्टुगीज़-मैना के घोड़े के पीछे पीछे दौड़ रहा है। सामने का घोड़ा जब जब अपनी गति धीमी करता है, तब तब बिजुली का रौद्रावतार चाबुक मार मार कर उसे जलते हुए मैदान में अधिक वेग से दौड़ा रहा है। और वह पोर्टुगीज़............परन्तु अब आगे इस भयानक वर्णन की आवश्यकता नहीं। पाप का परिणाम इस संसार में, कभी कभी, यदि इसी भांति हो तो असम्भव नहीं।

पार्वतीनन्दन।

ओंकार-मान्धाता।

मध्यप्रदेश में एक ज़िला नीमार है। इस ज़िले का ख़ास शहर खाँडवा है। वहीं ज़िले के हाकिम रहते हैं। खाँडवा से इन्दौर होती हुई राजपूताना-मालवा रेलवे की एक शाख़ अजमेर को जाती है। इस शाख़ पर मोरटक्का नाम का एक स्टेशन है। वह खाँडवा से ३७ मील है। इस स्टेशन से ७ मील दूर, नर्म्मदा के ऊपर, मान्धाता नाम का गाँव है। मोरटक्का के आगे बरवाहा स्टेशन है। वहां से भी लोग मान्धाता को जाते हैं। इस गाँव का कुछ भाग नर्म्मदा के दक्षिणी किनारे पर है और कुछ नदी के बीच में एक टापू के ऊपर है। यह टापू कोई डेढ़ मील लम्बा है। इस पर ऊंची ऊंची दो पहाड़ियां हैं। ये पहाड़ियां उत्तर-दक्षिण हैं। उनके बीच की ज़मीन ख़ाली है। पूर्व की तरफ़ ये दोनों पहाड़ियां एक दूसरी से मिल गई हैं और उनके कगार नर्म्मदा के भीतर तक चले गये हैं। दक्षिण की तरफ़ जो पहाड़ी है उसके दक्षिणी सिरे पर मान्धाता का जो भाग बसा हुआ है वह बहुत ही सुन्दर है। उसके मकान, मन्दिर और दूकानों की लैनें देखकर तबीयत ख़ुश हो जाती है। महाराजा होल्कर का महल सब से ऊंचा और सबसे अधिक शोभायमान है। पहाड़ी के ऊंचे नीचे सिरे तराशकर चौरस कर दिये गये हैं; उन्हीं पर मकान बने हुए हैं। जिस पहाड़ी पर मान्धाता है उस पर, गाँव से कुछ दूर, घना जङ्गल है। उस जङ्गल के भीतर प्राचीन इमारतों के चिन्ह दूर दूर तक पाये जाते हैं। कौस्यन्स साहब ने मध्यप्रदेश की प्राचीन इमारतों पर एक पुस्तक लिखी है। उसमें उन्होंने अपनी राय दी है कि किसी समय, इस पहाड़ी पर, मान्धाता की वर्तमान बस्ती से बहुत बड़ी बस्ती थी।

नर्म्मदा का बड़ा माहात्म्य है। गङ्गा से उतर कर नर्म्मदा ही का नम्बर है। अनेक साधु-सन्यासी नर्म्मदा की प्रदक्षिणा करते हैं। भड़ौंच के पास नर्म्मदा समुद्र में गिरी है। वहीं से ये लोग नर्म्मदा के किनारे किनारे अमरकण्टक तक चले जाते हैं और फिर वहां से ये दूसरे किनारे से भड़ौंच को लौट जाते हैं। इस प्रदक्षिणा में कोई तीन वर्ष लगते हैं। प्रदक्षिणा करनेवाले इन साधुओं की मान्धाता में बड़ी भीड़ रहती है। जाते भी ये वहां ठहरते हैं और लौटते भी।

नर्म्मदा के बीच में जो टापू है वह भी पर्वत-प्राय है। उस पर अनेक फाटक, मन्दिर, मठ, और मकानों के निशान हैं। दो एक मन्दिरों को छोड़ कर शेष सब इमारतें उजड़ी और आधी उजड़ी हुई दशा में पड़ी हैं। कहीं कहीं पर क़िले की दीवार के भी चिन्ह हैं। मान्धाता के वर्तमान नगर से यह उजाड़ नगर बिलकुल अलग है। इसमें एक आध विशाल मन्दिर और मकान अब तक बने हुए हैं; और वे देखने लायक़ हैं।

मान्धाता में ओंकार जी का प्रसिद्ध मन्दिर है। इसकी गिनती शिव के द्वादश लिङ्गों में है। दूर

दूर से लोग यहां यात्रा के लिए आते हैं। ओंकार जी का मन्दिर बहुत प्राचीन नहीं है; परन्तु उसके विशाल पाये बहुत पुराने हैं। वे किसी दूसरे मन्दिर के हैं। उसके भग्न हो जाने पर ये स्तम्भ इस मन्दिर में लगाये गये हैं। पुरातत्व के पण्डितों का अनुमान ऐसा ही है। इस मन्दिर में एक विचित्रता है। इसमें जो शिवलिङ्ग है वह दरवाज़े के सामने नहीं है। इससे वह सामने से देख नहीं पड़ता। वह गर्भगृह के एक तरफ़ है। इस कारण, बरामदे के सबसे दूरवर्ती कोने पर गये बिना, लिङ्ग के दर्शन बाहर से नहीं हो सकते।

यहां पहाड़ की चोटी पर सिद्धनाथ अथवा सिद्धेश्वर का एक मन्दिर है। वह सब से अधिक पुराना है। परन्तु वह, इस समय, उजाड़ दशा में पड़ा हुआ है। वह एक ऊंचे चबूतरे पर बना हुआ है। उसके पायों को, चारों तरफ, पत्थर के बड़े बड़े हाथी थांभे हुए हैं। उनमें से दे। हाथी नागपुर के अजायब घर में पहुँच गये हैं। वहां, दरवाज़े पर खड़े हुए, वे चैाकीदारी का काम कर रहे हैं। इस मन्दिर का गर्भगृह अब तक बना हुआ है। उसमें चार दरवाज़े हैं। शिखर गिर गया है। ओसारे की छत भी गिर गई है। जो भाग इस मन्दिर का शेष है उस पर बहुत अच्छा काम है। जिस समय यह मन्दिर अच्छी दशा में रहा होगा उस समय इसकी शोभा वर्णन करने लायक़ रही होगी।

नर्म्मदा के बायें तट पर कई पुराने मन्दिर हैं। यद्यपि इन मन्दिरों की महिमा, इस समय, कम हो गई है, तथापि जो लोग ओंकार जी को जाते हैं वे इनके भी दर्शन करते हैं। जिनको पुरानी वस्तुओं से प्रेम है उनको तो इन्हें अवश्य ही देखना चाहिए।

गैारी-सोमनाथ के मन्दिर के सामने एक प्रकाण्ड नन्दी है। हरे पत्थर को काटकर उसकी मूर्ति बनाई गई है। मान्धाता में नर्म्मदा के तट पर बने हुए घाटों की शोभा को देखकर चित्त बहुत प्रसन्न होता है।

सुनने में आता है कि १०२४ ईसवी में जब महमूद ग़ज़नवी ने सोमनाथ के मन्दिर को तोड़ा, तब मान्धाता में ओंकार जी के मन्दिर के सिवा अमरेश्वर नामक महादेव का भी एक मन्दिर था। उसकी भी गिनती द्वादश लिङ्गों में थी। परन्तु सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी की लड़ाइयों में नर्म्मदा का दक्षिणी तट, जहां पर ये दोनों मन्दिर थे, बिलकुल उजाड़ हो गया। उस पर इतना घना जङ्गल हो आया कि जब पेशवा ने ओंकार जी के मन्दिर की मरम्मत करानी चाही तब वह, बहुत ढूंढ़ने पर भी, न मिला। इससे उसने एक नयाही मन्दिर बनवाकर उसका नाम ओंकार जी रख दिया। पीछे से राजा मान्धाता को ओंकार जी का पुराना मन्दिर मिला और उसने उसकी मरम्मत भी कराई। परन्तु पेशवा के बनवाये हुए मन्दिर का तब तक इतना नाम हो गया था कि लोगों ने असल की अपेक्षा उस नक़ली मन्दिर की अधिक प्रतिष्ठा की। इसीसे उस मन्दिर की प्रधानता रही।

ठाकुर जगमोहनसिंह ने, जिस समय वे खांडवा में तहसीलदार थे, ओंकारचन्द्रिका नामक एक पद्यबद्ध छोटी सी पुस्तक लिखी है। उसमें उन्होंने ओंकार जी का अच्छा वर्णन किया है।

कलकत्ते की काल-कोठरी।

१७५६ ईसवी के एप्रिल महीने में मुरशिदाबाद के नवाब अलीवर्दी ख़ां की मृत्यु हुई। उसके मरने पर सिराजुद्दौला को नवाबी मिली। अङ्गरेज़ी ग्रन्थकार सिराजुद्दौला को दुर्गुणों की खानि बतलाते हैं। वे कहते हैं कि उसे अङ्गरेज़ों से सख्त नफ़रत थी। उस समय ग्रेटब्रिटेन और फ़्रांस से एक दूसरी लड़ाई छिड़नेवाली थी। इस लिए नवाब को लोगों ने सुझाया कि अङ्गरेज़ कलकत्ते में क़िलाबन्दी कर रहे हैं और शीघ्र ही वे चन्द्रनगर के फ़रासीसियों पर चढ़ाई करेंगे। फ़रासीसी नवाब

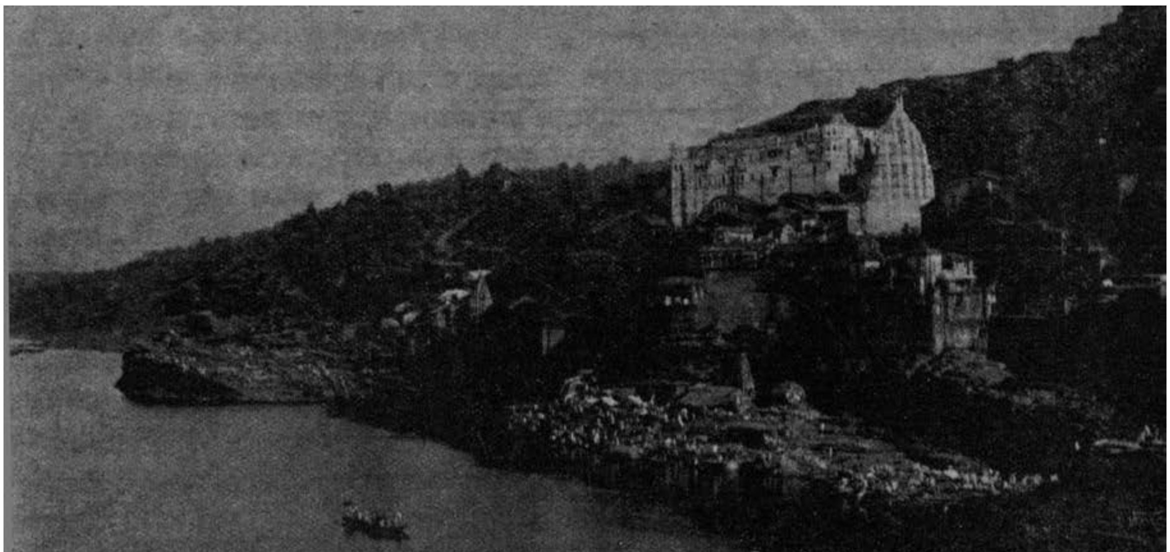

नर्मदा का घाट और मान्धाता का मन्दिर।

National Library, ओंकार-मान्धाता में नर्मदा का दृश्य।

ओंकारजी का पुराना मन्दिर।

के कृपापात्र थे। अपने कई कर्मचारियों से सिराजुद्दौला नाराज़ हो गया था; अतएव दण्ड से बचने के लिए वे लोग मुरशिदाबाद से कलकत्ते भग आये थे। इन कारणों से, सिराजुद्दौला अङ्गरेज़ों से बहुत ही कुपित हो गया था। परन्तु किसी किसी का मत है कि अङ्गरेज़ों को लूट लेने का उसने पहले ही से पक्का इरादा कर लिया था। इसके लिए जो कारण उसने बतलाये थे वे केवल बहाना मात्र थे। उसने सुन रक्खा था कि अङ्गरेज़ों के पास अपार सम्पत्ति है। इस सम्पत्ति को छीनने के लिए उसकी लार लड़कपन से टपकती थी।

सिराजुद्दौला को बहुत कम उम्र में नवाबी मिली। नवाब होते ही, मुरशिदाबाद के पास, अङ्गरेज़ों की क़ासिमबाज़ार वाली कोठी को उसने लूटा। जो कुछ माल और रुपया उसे मिला उस को क़ब्ज़े में करके, वहां के अङ्गरेज़ व्यापारियों को उसने क़ैद कर लिया। फिर, १८५६ ईसवी के जून में, ५०,००० पैदल और बहुत सी तोपें लेकर, उसने कलकत्ते पर हमला किया। उस समय कलकत्ते में अङ्गरेज़ों की संख्या कुल ५०० के क़रीब थी। उन में से लड़नेवाले गोरे सिपाही १७० ही थे। १५ जून को लड़ाई शुरू हुई। १८ तारीख़ को स्त्रियां और बच्चे जहाज़ों पर पहुँचा दिये गये; उन्हींके साथ कितने ही अङ्गरेज़ भी निकल गये। ड्रेक साहब कलकत्ते के गवर्नर थे; वे भी उसी दिन वहां से चलते हुए। उनके चले जाने पर बचे हुए अङ्गरेज़ों ने हालव्यल साहब को गवर्नर माना। पचास हज़ार फ़ौज के सामने सौ पचास अङ्गरेज़ क्या कर सकते थे? अन्त में, लाचार हो कर, १९ जून को तीसरे पहर, इन लोगों ने अपने को नवाब के स्वाधीन कर दिया।

इसके उपरान्त जो कुछ हुआ उसे सुनकर योरप काँप उठा। सब क़ैदी एक अङ्गरेज़ी बारिक़ में इकट्ठे किये गये। उसके एक छोर पर अङ्गरेज़ों के फ़ौजी क़ैदियों के लिए, हवालात की तरह, एक कोठरी थी। इस हवालात का अङ्गरेज़ी नाम "ब्लैक होल" था। इसी में वे १४६ क़ैदी, मर्द और औरत, सब, भर दिये गये। यह "ब्लैक होल" नामक काल-कोठरी १८१८ ईसवी तक यथास्थित थी। उसका उस समय तक का वर्णन कई लोगों ने, जिन्होंने उसे देखा था, किया है। इसके बाद वह गिरा दी गई। परन्तु, कुछ समय हुआ, बँगला भाषा में सिराजुद्दौला के ऊपर एक किताब प्रकाशित हुई है। उसमें यह सिद्ध किया गया है, कि काल-कोठरी एक ख़याली बात है। उसका जितना क्षेत्रफल बतलाया जाता है उसमें १४६ आदमी हरगिज़ हरगिज़ नहीं आ सकते। इस किताब के तर्क और सिद्धान्तों का खण्डन एक योरोपियन लेखक ने, अभी कुछ दिन हुए, "ब्लैक उड्स मैगेज़ीन" नामक सामयिक पत्रिका में बड़ी योग्यता से किया है। इस कोठरी में जो लोग भरे गये थे उनमें से कलकत्ते के अल्पकालिक गवर्नर हालव्यल साहब भी थे। १९ जून, रविवार, की यन्त्रणा भोग कर वे जीते बच गये थे। उन्होंने इस काल-कोठरी का जो रुधिर-शोषक वृत्तान्त लिखा है उसे ही हम यहां पर देते हैं। चाहे वह ख़याली हो, चाहे सच।

पूर्वोक्त १४६ आदमियों में से, सोमवार २० जून को सुबह, जब काल-कोठरी का दरवाज़ा खोला गया, तब केवल २३ आदमी जीते निकले। इनमें से एक स्त्री भी थी। मरे हुओं में से कितने ही कौंसिल के मेम्बर थे; कितने ही फ़ौजी अफ़सर थे; और कितने ही व्यापारी थे। इन सब के नामों की तालिका भी हालव्यल साहब ने दी है।

हालव्यल ने काल-कोठरी का जो बयान लिखा है वह पत्र के रूप में है। यह पत्र उन्होंने साइरन नामक जहाज़ पर से, २८ फ़रवरी १७५७ ईसवी को, विलियम डेविस नामक अपने एक मित्र को लिखा है। पत्र बहुत लम्बा है। इसे पढ़कर पढ़नेवाले का ख़ून सूख जाता है। इसका शब्द प्रतिशब्द अनुवाद न देकर हम इसका केवल सारांश यहां पर लिखते हैं। यह सारांश हालव्यल साहब के ही मुँह से सुनिये।

'ईस्ट इण्डिया कम्पनी की बङ्गालवाली ज़मीदारी छिन जाने पर लण्डन में बड़ा ही शोर व ग़ुल हुआ होगा। ब्लैक-होल में जिन लोगों को अपने प्राण देने पड़े उनकी मौत का समाचार सुनकर वह शोर व ग़ुल और भी बढ़ गया होगा। तुमने सुना ही होगा, कि १४६ में से कुल २३ आदमी, २० जून १७५६ को, ब्लैक-होल से ज़िन्दा निकले। जो मरने से बचे उनमें से कुछ ही ऐसे थे जो इस लोमहर्षण हादसे का बयान लिख सकते थे; परन्तु उनमें से किसीने लिखने की कोशिश नहीं की। मैं कई बार लिखने बैठा और कई बार क़लम रखना पड़ा। क़लम उठाते ही उस रात की घोर और हृदय-कम्प-कारिणी यन्त्रणायें मेरी आँखों के सामने आने लगीं। अँगरेज़ी कोश में ऐसे शब्दही नहीं जिनसे सैकड़ों नरनारियों को अवर्णनीय यातना पहुँचा कर उनका प्राण हरनेवाली वह महा भयानक दुर्घटना बयान की जा सके। भाषा में यह शक्ति ही नहीं कि वह उसका पूरा पूरा चित्र उतार सके। चाहै कोई उसे जितनी रङ्गीन बनावे; चाहै उसमें कोई जितना नमक मिर्च मिलावै; वह उस भयङ्कर हत्याकाण्ड का पूरे तौर पर हरग़िज़ हरग़िज़ वर्णन न लिख सकैगा। परन्तु लिखना अवश्य होगा। ऐसी महत्व-पूर्ण ऐतिहासिक घटना को लिख रखना बहुत ज़रूरी बात है। इसी लिए मैं आज दिल कड़ा करके लिखने बैठा हूं। तबीयत भी मेरी अब अच्छी है। ब्लैक-होल की विपद् ने मेरे शरीर को जो धक्का पहुँचाया था उसका असर अभी तक मुझ में बना है; अभी तक मैं सबल नहीं हुआ। परन्तु लिखने लायक़ हो गया हूं। सामुद्रिक वायु से मुझे बड़ा फ़ायदा हुआ है। इस लिए उस कालरात्रि का वर्णन अब मैं आरम्भ करता हूं। सुनिए।

"१९ जून की शाम को ६ बजे के पहले ही कलकत्ते का क़िला नवाब के क़ब्ज़े में आ गया। मैं तीन बार नवाब से मिला। आख़िरी बार मैं ७ बजे मिला था। नवाब ने मुझे विश्वास दिलाया कि हम लोगों का बाल भी बांका न होगा। और, मैं समझता हूं, उसका हुक्म भी ऐसा ही था। परन्तु हम लोग जिनके सिपुर्द किये गये उनके कितने ही साथियों को हमने लड़ाई में मारा था। यह बात उनके दिल में बहुत खटकती थी। इस लिए वे लोग मनहीमन हम से जल रहे थे; और बदला लेने के लिए उतावले हो रहे थे। जब अँधेरा हुआ तब हम लोगों की निगरानी के लिए जो गारद थी वह डबल कर दी गई। उसके हुक्म से हम सब बारिक के बरामदे में इकट्ठे होकर एक जगह बैठ गये। इतने में कलकत्ते की कोठी से ज्वाला निकलने लगी; उसमें आग लगा दी गई। दाहिनी तरफ़ जो हथियार-घर था वह भी जलने लगा; और बाईं तरफ़ जो बढ़ई लोगों का कारख़ाना था वह भी ज्वाला वमन करने लगा। हम लोगों ने समझा कि सब तरफ़ से आग लगाकर उसीमें हमको भून डालने का बन्दोबस्त हो रहा है। साढ़े सात बजने पर, कुछ फ़ौज अपने अफ़सरों के साथ, हाथों में मशाल लिए हुए, हमारे पास आ पहुँची। इस पर हम लोगों को अपने जलाये जाने का निश्चय हो गया। तब हम सब ने मनसूबा किया, कि इस प्रकार जीते जलना मञ्ज़ूर करने की अपेक्षा, इन लोगों पर एकदम हमला करके, इनके शस्त्र छीन लेना चाहिए; और इनको इस अमानुषी कर्म्म का मज़ा चखाना चाहिए। परन्तु हमारा सन्देह केवल भ्रम था। वे लोग मशालें जलाकर हमको रात भर क़ैद रखने के लिए जगह ढूँढ़ते थे।

"इस समय लीच साहब मेरे पास आये। वे कम्पनी के कारख़ाने में लोहार का भी काम करते थे और लेखक का भी। मुझे सुरक्षित भगा ले जाने के लिए उन्होंने पास ही एक नाव तैयार कर ली थी। हमारे पहरेवाले भी हम लोगों की तरफ़ से बहुत बेपरवाह थे। इस लिए यदि मैं चाहता तो निःशङ्क भग जाता। परन्तु अपने साथियों को छोड़ कर भग जाना मैंने कृतघ्नता समझा। इसलिए मैंने लीच से कहा कि तुम जिस रास्ते आये हो उसी रास्ते फ़ौरन वापस जाओ। मैं औरों को छोड़

कर अकेला नहीं जा सकता। यह सुनकर वह वीर और परोपकारी पुरुष हम लोगों के दुर्भाग्य का हिस्सेदार बना। वह भी हम सब में शामिल हो गया।

"इतने में नवाब की गारद हमारी ओर बढ़ी और हमको बारिक के भीतर ले चली। हम लोग बहुत खुश हुए। हमने समझा, वहां पर, रात सुख से कट जायगी। इस सुखाशा का एक मिनट में नाश हो गया। ज्यौंही सब लोग भीतर आ गये त्यौंहीं गारद के अगले आदमियों ने, अपनी बन्दूकें सामने करके, उस लम्बी दालान के दक्षिण तरफ़ बनी हुई काल-कोठरी में घुसने के लिए हमको हुक्म दिया। उधर गारद के दूसरे हिस्से ने, डण्डे उठाकर और नङ्गी तलवारें निकाल कर, हम लोगों को पीछे से दबाया। इस तरह हम लोग उसमें घुसने के लिए मजबूर किये गये। हम न जानते थे कि वह कोठरी इतनी तङ्ग है, नहीं तो हम लोग हरगिज़ उसके भीतर न घुसते; फिर चाहे हमारे शरीर के टुकड़े टुकड़े उड़ा दिये जाते।

"सब तरफ़ से मजबूर किये जाने पर हम लोग उस कोठरी के भीतर घुसे। मैं पहले घुसा; मेरे साथ ही सात आठ आदमी और भी भीतर गये। मैं दरवाज़े के पास की खिड़की के नीचे खड़ा हो गया। कोल्स और स्काट साहब को भी मैंने अपने पास ले लिया; वे दोनों घायल थे। मेरे दोस्त, इस बात को न भूलना कि वह कोठरी कुल १८ फ़ुट लम्बी चौड़ी थी। और उसमें हम सब १४६ नरनारी भेड़ बकरियों की तरह भरे थे। मौसम गरमी का था; सो भी बङ्गाल का। कोठरी तीन तरफ़ से बिलकुल बन्द थी। एक तरफ़ मात्र दो खिड़कियां थीं; उनमें भी लोहे के मज़बूत डण्डे लगे थे। ताज़ी हवा मिलना सर्वथा दुर्लभ था। ऐसी हालत में रक्त का अभिसरण प्रायः असम्भव था। ज़रा देर में मृत्यु आँखों के सामने नज़र आने लगी। किवाड़े तोड़ कर निकल जाने की बहुत कोशिश की गई; परन्तु व्यर्थ।

"गड़बड़ शुरू हुआ। सब लोग छटपटाने लगे। मार पीट की नौबत पहुँची। मैंने बहुत समझाया और कहा कि जैसा तुम लोगों ने दिन को मेरी आज्ञा मानी है, वैसे ही इस समय भी तुमको माननी चाहिए। सबेरे हम लोग यहां से निकाले जायँगे। यदि तुम धीरज के साथ रात न काटोगे तो इससे जीते निकलना असम्भव है। सबको चाहिए कि वे अपनी जान के लिए, और अपने बालबच्चों के लिए, इस विपद को चुपचाप झेलें। बेफ़ायदा बकबाद करने और परस्पर लड़ने झगड़ने से, और तो कुछ होने का नहीं; परन्तु मौत आने में जलदी होगी। मेरे उपदेश और मेरी प्रार्थना ने कुछ काम किया ज़रा देर के लिए लोग चुप हो गये। मैं सोचने लगा। मैं अनेक रूप में मौत को सामने देखने लगा। मेरे दोनों घायल दोस्त अपने कराहने से मेरे मृत्यु-दर्शन के दृश्य में विघ्न डालने लगे। मैं समझ गया कि क्या होने वाला है। मृत्यु-नर्तकी ने सब के चेहरों को अपनी भयङ्कर रङ्गभूमि बनाया। मैं अपनी दशा को भूल गया; परन्तु अपने साथियों की यम-यातना ने मुझे बहुत ही विकल किया।

"मेरी खिड़की के पास गारद का एक बुड्ढा जमादार था। उसके चेहरे पर मैंने कुछ आदमियत के निशान देखे। उसको मैंने पास बुलाया। पत्थर को भी विदीर्ण करनेवाली हमारी दुर्दशा उसने देखी। मैंने उसे एक हज़ार रुपये देने का वादा किया; और कहा, कि किसी तरह वह हम सब को आधे आधे दो जगह कर दे। उसको कुछ दया आई। उसने प्रयत्न करने का वचन दिया। कुछ देर के लिए वह बाहर गया; परन्तु लौटकर उसने अपनी असमर्थता प्रकट की। मैंने समझा एक हज़ार का पारितोषिक कम था। इस लिए मैंने उसे डबल कर दिया। जमादार फिर बाहर गया; परन्तु फिर नाकामियाब वापस आया। उसने कहा नवाब साहब सोते हैं; उनको जगाना जान को खोना है। और उनके हुकम के सिवा और किसीमें शक्ति नहीं जो तुमको यहां से निकाल सके।

"हम लोगों की घबराहट और बेचैनी बढ़ने लगी। पसीने की धारा बदन से निकल पड़ी। कपड़े सब सराबोर हो गये। सबका कण्ठ सूखने लगा; प्यास बढ़ी; और जैसे जैसे बदन की नमी पसीना होकर निकलने लगी, तैसे तैसे प्यास प्रचण्ड होती गई। प्यास की यह दशा और कोठरी में हवा का नाम नहीं! हम लोगों ने कपड़े उतार डाले और टोपियां हिलाना शुरू किया। इससे कुछ आराम मिला; परन्तु बहुत थोड़ी देर के लिए। सब की सलाह से हम लोग, जो अब तक खड़े थे, बैठ गये। इस समय ८ बजे थे। बैठने से वायु का कुछ अधिक सञ्चार ज़रूर हुआ; परन्तु, जगह कम होने के कारण हम लोगों को कई बार उठना बैठना पड़ा। मैंने देखा कि बैठकर उठने में बड़ी मुशकिल होती थी; क्योंकि आदमी एक दूसरे से सटे थे। इनमें से कुछ ऐसे थे जो बहुत कमज़ोर थे; उनमें बैठकर उठने की शक्ति ही न थी। हाय, हाय। उनकी वहीं मैात हो गई। उठने का हुकम पाने पर वे उठ नहीं सके। वे अभागे वहीं बैठे बैठे कुचल गये। यदि किसी में प्राणवायु शेष भी रहा तो, ज़रा देर में, नीचे निर्वात स्थान में पड़े रहने के कारण, दम घुट कर, वह भी चलता हुआ।

"नैा बजे के क़रीब प्यास असह्य हो गई। साँस लेने में कठिनता होने लगी। हमारी हालत जानवरों से भी बदतर थी। झटपट मैात आजाती तो अच्छा था। किवाड़े तोड़ने की फिर कोशिश हुई। सबने बेतहाशा ज़ोर लगाया; परन्तु सब व्यर्थ। गारद के सिपाहियों पर गालियों की वर्षा होने लगी; उनको महा अपमानसूचक और घृणित बातें सुनाई गईं। आशा थी कि इस बेइज्ज़ती का बदला लेने के लिए वे हम लोगों पर बन्दूक छोड़ेंगे; परन्तु ऐसा नहीं हुआ। मेरी दशा अब तक ख़राब न थी। खिड़की में जो लोहे की शलाकायें थीं, उन्हीं में से, दे के बीच, मैंने अपना मुँह लगा दिया था। इससे मुझे थोड़ी बहुत हवा मिलती थी। इस समय उस काल-कोठरी में ऐसी बदबू पैदा हो गई थी कि मेरी नाक फटने लगी। मैं, हज़ार कोशिश करने पर भी, उस तरफ़ मुँह न फेर सका। जो लोग खिड़की के पास थे उनको छोड़कर बाक़ी सब एक दूसरे का अपमान करने लगे; बुरा भला कहने लगे। कुछ बेहोश हो गये; और उस बेहोशी की हालत में, जो कुछ मुँह से निकला, बकने लगे। सबके मुँह से पानी, पानी, पानी की चिल्लाहट सुनाई पड़ने लगी। उस बुड्ढे जमादार के हम पर दया आई। उसने मशकों में पानी लाये जाने का हुक्म दिया। यह देख मैं घबरा उठा। मैंने मन में कहा, अब कोई नहीं बचैगा। इस नरक-यातना की कहानी कहने के लिए एक भी शेष न रहैगा। मैंने जमादार से चुपचाप कहना चाहा कि पानी लाना हम लोगों के लिए मैात बुलाना है। परन्तु मेरी सुनै कैान? मैंने सबका अन्त समीप आ गया समझा।

"अब तक मुझे प्यास न थी। पर पानी देखकर मुझे भी उसकी बाधा हुई। पानी पिलाया किस तरह जाय? बरतन तो कोई था ही नहीं। यह कठिनाई हमारी टोपियों ने हल कर दी। मैं और मेरे दे तीन साथी, जो खिड़की के पास थे, टोपियों में पानी लेने लगे, और बहुत शीघ्रता से उसे सब के पहुँचाने लगे। परन्तु इस पानी ने प्यास के और भी बढ़ाया। उससे एक क्षणही भर सन्तोष हुआ। पीछे फिर वही दशा। फिर, पानी, पानी, पानी की आवाज़। हम लोग टोपियों के पानी से ख़ूब भर कर लाते थे; परन्तु उसे पाने के लिए, आपस में, जो मारपीट, जो घूंसेबाज़ी और जो बलप्रयोग होता था, वह उसे गिराकर छटाँकही डेढ़ छटाँक रहने देता था। पीनेवाले के होठों तक पहुँचने के समय, एक टोपी में, इससे अधिक पानी न रह जाता था। जलती हुई आग में पानी छिड़कने से जैसे वह और भी अधिक प्रज्वलित हो उठती है, वैसोही दशा हम सबकी हुई। प्यास की सीमा न रही; वह अपनी हद के उल्लंघन कर गई।

"मेरे प्यारे दोस्त, मैं उन लोगों की बेकली का तुमसे किस प्रकार वर्णन करूं जो उस काल-कोठरी

में सब से दूर थे। उनको एक भी बूंद पानी मिलने की आशा न थी; परन्तु तिस पर भी जीने से वे निराश नहीं हुए थे। उनमें से कुछ ऐसे थे जिन पर मेरा बहुत प्रेम था। वे बड़े ही करुणास्वर में पानी के लिए मुझ से प्रार्थना करते थे; और पुराने प्रेम का परिचय देकर, बार बार, मुझे उसकी याद दिलाते थे। दोस्त, अगर सोच सको तो सोचो कि उस समय, मेरी क्या दशा हुई होगी। मुझे आश्चर्य है कि मेरा हृदय क्यों नहीं फट गया। मेरा कलेजा मुँह के रास्ते क्यों नहीं बाहर निकल आया। मैं सर्वथा लाचार था। मैं उन तक पानी न पहुँचा सकता था। लोगों की हालत अबतर हो गई। दृश्य भयानक दिखाई देने लगा। जो लोग दूर थे, वे बलपूर्वक दूसरों को हटा कर पानीवाली खिड़की के पास पहुँचने लगे। खिड़की के पास बेतरह भीड़ हुई; पल पल पर कशमकश बढ़ने लगी। जो लोग अधिक सशक्त और बलवान थे, वे कमज़ोरों को पैरों के नीचे कुचल कर खिड़की के पास आ पहुँचे। इस अमानुषी कर्म्म से अनेक पिस गये और मौत ने ख़ुशी ख़ुशी उनको उसी क्षण ग्रास कर लिया।

"क्या तुम विश्वास करोगे कि गारद में जो लोग उस काल-कोठरी के बाहर थे, वे हमारे इस प्राणान्तक कष्ट को, इस अनिर्वचनीय विपद को, इस घोर दुर्दशा को, देख देख हँसते थे! उनके लिए यह एक अच्छा तमाशा था। वे बराबर पानी देते जाते थे जिसमें हम लोग उसके लिए लड़ लड़ कर प्राणों से हाथ धोते जावें। खिड़की के पास मशालें भी उन्होंने लगा दी थीं, जिसका मतलब यह था कि इस नर-नारी-यातना नाटक का कोई अङ्क उनका अदेखा न रह जाय। ११ बजे तक मैंने यह नाटक देखा और पानी पहुँचाता रहा। आगे मैं न देख सका। मेरे पैरों की हड्डियां टूटने लगीं। सब तरफ़ के दबाव से मैं म्रियमाण होने को हुआ। लोग अपने आप को अब भूलने लगे। मेरा मान अभी तक बराबर रक्खा गया था; परन्तु अब वह लोप होने लगा। समय ही ऐसा था। मरने के वक़्त कौन किसका साथी होता है? क्रम क्रम से उम्र का, विद्या का, वैभव का, सब ख़याल जाता रहा। मेरे कितने ही मित्र और स्नेही, जो बहुत बड़े रुतबे के आदमी थे, मेरे पैरों के पास मरे पड़े थे। अब उन को नाचीज़ फ़ौजी गोरे अपने बूटों से कुचलने लगे। उनके ऊपर पैर रखते हुए वे खिड़की के पास पानी के लिए आ पहुँचे। मैं दब कर मरने लगा। मेरा हाथ पैर हिलाना बन्द हो गया। मैंने हाथ जोड़े, प्रार्थना की, विनती की, और कहा, भाई, मेरे ऊपर से ज़रा हटो। मैं खिड़की के पास नहीं रहना चाहता। मैं कमरे के बीच में चला जाऊँगा। मुझे निकल जाने दो। मेरे गिड़गिड़ाने का कुछ असर हुआ। मुझे रास्ता मिला। मैं काल-कोठरी के बीच में आया। वहां मुर्दों का ढेर था। तब तक एक तिहाई मर चुके थे। दूसरी खिड़की पर भी पानी आ गया था। इसलिए उस तरफ़ भी ख़ूब भीड़ लग गई थी। इसीसे बीच में कमरा ख़ाली था। पर मुर्दों से नहीं, ज़िन्दों से।

"कमरे में एक तरफ़ एक चबूतरा था। मुर्दों के ऊपर पैर रखते हुए मैं वहां पहुँचा और एक जगह बैठ गया। यह मुझे निश्चय हो गया कि अब मैं मरूंगा। परन्तु अफ़सोस इस बात का हुआ कि मरने में विलम्ब था। मेरे पास ही कप्तान स्टिवेनसन और डम्बुल्टन पड़े थे। डम्बुल्टन का दम उस समय निकल रहा था। जब से मैंने खिड़की छोड़ा मुझे सांस लेने में तकलीफ़ होने लगी। थोड़ी देर में मेरे दोस्त यडवर्ड आयर, मुर्दों के ऊपर पैर रखते और ठोकरें खाते, मेरे पास आये। उन्होंने पूछा कि मेरी क्या हालत थी? परन्तु मैं जवाब न देने पाया था, कि वे वहीं गिरे और मर गये! मैंने अपना आत्मा ईश्वर को सौंपा; और मैं मौत का रास्ता देखने लगा। मुझे सख़्त प्यास मालूम हुई। दस मिनट बाद साँस लेने की कठिनाई और भी बढ़ी। मेरी छाती में बड़ा दर्द हुआ। दिल धड़कने लगा। मैं फिर खड़ा हो गया। यह तकलीफ़ देर तक मैं नहीं बरदाश्त कर सका। इसे कम करने के लिए हवा

की बड़ी ज़रूरत थी। इसलिए मैं फिर खिड़की की तरफ़ लपका। उस समय मुझमें दूना बल आ गया। झपट कर मैंने खिड़की की शलाका पकड़ ली। ऐसा करने में मुझे छ सात आदमियों के हटाना पड़ा। मेरा दर्द जाता रहा; दिल का धड़कना भी बन्द हो गया; सांस भी ठीक तौर पर चलने लगी। पर प्यास ने ज़ोर किया। "भगवान के लिए मुझे पानी दो" यह कह कर मैं चिल्ला उठा। लोगों ने मुझे मरा समझा था। परन्तु मेरी आवाज़ से उन्होंने जाना कि मैं जीता हूं। सबने मुझे पहले पानी देने की प्रार्थना की। मैंने पानी पिया; पर मेरी प्यास न गई। वह और भी बढ़ी। मैंने कहा, बहुत पानी पीना बेफ़ायदा है। उस समय मेरी कमीज़ पसीने से सराबोर थी। उसीके आस्तीन मैं चूसने लगा। सिर से भी पसीने की बूंदें बराबर बरस रही थीं। उन्हें भी मैं मुंह में लेने लगा। इस तरह मैं अपने होठ और हलक़ को नम बनाये रहा। जब मैं इस कोठरी में घुसा, तब मेरे बदन पर केवल एक कमीज़ थी। गरमी के कारण कोट मैं ने पहले ही से न पहना था। वास्कट थी; परन्तु उसे देखकर, गारद के एक जमादार की लार टपक पड़ी। उसे उसने ले लिया। कमीज़ के पसीने से मैं अपनी प्यास, यथासम्भव, बुझाने लगा था। परन्तु इसमें भी बाधा आई। मेरे एक साथी ने यह प्रस्वेद-पीयूष पीते मुझे देख लिया। वह मेरे पास ही था। उसने मेरी कमीज़ पर हमला किया। और मेरे जीवन का एक मात्र यह सहारा उसने ख़ूब लूटा। मुझे पीछे से इस लुटेरे का पता लग गया। वे हमारे सुयोग्य लूशिंगटन साहब थे। आप भी इस कोठरी से जीते निकले थे"। [असमाप्त।

आँख।

"य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यत एष आत्मेति
होवाचैतदमृतमभयमेतद् ब्रह्म" छान्दोग्य ४।१५।१

"अक्षि चष्टेरनक्तेरित्याग्रायणस्तस्मादेते
व्यक्ततरे इव भवतः" निरुक्त १।३।४

परमेश्वर की रचना में यों तो एक से एक अद्भुत, अनुपम और सुन्दर पदार्थ हैं; सारा विश्व ब्रह्माण्ड ही ऐसा है कि अपने गुणों से अपने कर्त्ता के लिए वह बारम्बार कहलाता है कि—

यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह

तथापि मनुष्यदेह से अधिक कोई पदार्थ अद्भुत नहीं। यही ईश्वर का प्रथम मन्दिर है, यही जगत् की सब लीलाओं का केन्द्र है। यदि किसी घर का रहनेवाला अपने निवास का हाल न जाने तो वह हास्यास्पद होता है; किन्तु इस पवित्र घर में रहते भी हम इसका वृत्तान्त न जानने के अपराधी हैं। इस घरकी प्रधान खिड़की आँख ऐसी विलक्षण है कि न्यूटन के कथनानुसार आँख की परीक्षा नास्तिकता की परम महौषधि है। ऊपर लिखी श्रुति का अभिप्राय यह है कि ज्ञानी लोग आँख ही के द्वारा सच्चिदानन्द का ज्ञान प्राप्त करते हैं। निरुक्तकार 'अक्षि' का अर्थ यह करते हैं कि वह स्वयं बहुत व्यक्त होती है अथवा सब चीज़ों को व्यक्त करती है। साधारण कहावत है कि आँख मूंदने पर कुछ भी नहीं रहता। सच है, आँख की आवश्यकता और उपयोगिता की महिमा तब तक कदापि कम नहीं हो सकती जब तक कि मनुष्य जाति और इन्द्रिय उत्पन्न न करले। दूरबीन प्रभृति विज्ञान के मुकुट स्वरूप यन्त्र आँखके परिशेष-पूरक हैं। आँख न होने से वे किसी कामके नहीं। विशेष करके चञ्चलता और त्वक् से सम्बन्ध होने के कारण आँख ने मानो जगत् के ज्ञान-साम्राज्य को ठोकर ही मारदी। ऐसी अनुपम इन्द्रिय का वृत्तान्त किस को न रुचेगा? नैयायिकों के अनुसार कृष्णतारा के अग्रभाग में स्थित चक्षु इन्द्रिय आलोक-संयोग, और उद्भुत रूप संयोग से, उद्भुत रूप, रूपवान् द्रव्य, पृथक्त्व, संख्या, विभाग, संयोग, परत्व, अपरत्व, स्नेह, द्रवत्व और परिमाण तथा क्रिया जाति और समवाय को

ग्रहण करती है। गवेषणा के नायक पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने आँख पर क्या क्या लिखा है उसका एक साथ समावेश करना अति दुष्कर है। तथापि उस का सार देने का यत्न किया जाता है।

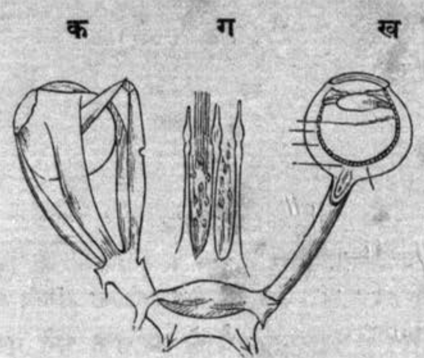

चित्र १
क बाईं आंख स्नायु दिखाती हुई ग शङ्कु और छड़ियां ख दाहनी आंख का असली रूप।

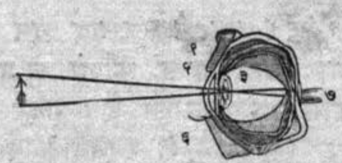

चित्र २
१ कार्निया। २ इरिस। ३ काच। ४ रेटिना। ५ काली चद्दर। ६ स्कलेरोटिक। ७ ज्ञानतन्तु।

इन्द्रिय।

आँख बाहर से प्रायः गोलाकार होती है। सामने ही जो काँच की सी झिल्ली दिखाई देती है उसे कार्निया कहते हैं। इसके पीछे थोड़ी दूर पर आइरिस नाम की झिल्ली है; यह वही रङ्गीन गोल पदार्थ है जो आँख के सफ़ेदे के बीच में दिखाई देता है। इस झिल्लीके बीचमें एक छिद्र होता है। यह मनुष्य की आँख में गोल होता है; बिल्ली की आँख में तङ्ग और लम्बा होता है। इसीके द्वारा किरण आँख के भीतर प्रवेश करते हैं। प्रकाश के प्रवेश को नियमित करने के लिए यह फैल और सिकुड़ सकता है। इसके पीछे, बहुत पास ही, दोनों ओर से उन्नतोदर एक काच वा उसके सदृश पदार्थ है। यह भी फैल और सिकुड़ सकता है। इस ताल को यथास्थान रखने के लिए "सिलिएरी" स्नायु नामक एक माँस का छल्ला है, जो ऊपर के ढकन स्केलेरेटिक में ही लगा हुआ है। इसके पीछे का सब भाग, आँख के पिछवाड़े तक, अण्डे के रस के सदृश चिपचिपे पारदर्शक पदार्थ से भरा हुआ होता है, जिसे "काचीय अर्क" कहना उचित होगा। आगे, 'काच' और कार्निया के बीच में भी ऐसा ही विमल रस है जिसे "जलीय अर्क" कहते हैं। आँख के अन्दर का सब पिछला भाग रेटिना नामक मुलायम, श्वेत और विमल झिल्ली से मढ़ा हुआ है। यह मानो उस ज्ञानतन्तु का जाल को तरह फैला हुआ अग्रभाग है जो यहां से मस्तिष्क तक जाने तथा दर्शन का ज्ञान कराने के कारण चाक्षुष ज्ञानतन्तु कहलाती है। रेटिना ही दर्शनेन्द्रिय का प्रधान तथा दुर्बोध भाग है। ज्ञानतन्तु पीछे से आकर तन्तु-शिराओं के रूप में अन्दरी सतह पर फैले हुए हैं वहाँ से पीछे को मुड़कर मस्तिष्क के प्रथम स्वरूप गोल गोल कणों की तरह वे व्याप्त हैं; वा छड़ी से अथवा शङ्कु के से टुकड़ों का रूप धारण करके आड़े पड़े हुए हैं। मनुष्य की आँख में इन शङ्कुओं की संख्या ३३,६०,००० मानी गई है; छड़ियों की संख्या का पता नहीं। इन छड़ियों में एक प्रकार का रङ्ग है जो प्रकाश में उड़ जाता है और अन्धेरे में फिर प्राप्त हो जाता है। इन छड़ी शङ्कुओं का पूरा कर्तव्य क्या है सो तो मालूम नहीं, हां, आकारपरिज्ञान तथा रङ्गज्ञान में यह काम देते हैं। यदि आलोक ज्ञानतन्तु के एक ऐसे स्थान पर पड़े जहां कोई शङ्कु न हो, तो कुछ देख नहीं पड़ता; इस स्थान का नाम "अन्धबिन्दु" है। इसके विरुद्ध एक दूसरे स्थान पर बहुत से शङ्कु रक्खे हुए हैं; वहां पर बहुत तीव्र दर्शन होता है। इस स्थान को "पीतबिन्दु" कहते हैं। यह सब आँखों में एक स्थान पर नहीं होता; तथा मृत्यु के पीछे बहुत कम देर तक रहता

है। बकरे की आँख में इस बिन्दुको मैंने स्वयं देखा है। रेटिना के पीछे एक और कोरोइड नामक झिल्ली है। उसमें कुछ काले गोल दानों के समान पदार्थ है जो उन किरणों को शोष लेता है जो दर्शन में काम नहीं दे सकतीं। अन्त में यही कहना है कि "स्क्लेराटिक" नामकी झिल्ली आँख को घेरे हुए है और आगे आकर कार्निया में मिल गई है। यह सफ़ेद ढक्कन आँख को सुरक्षित रखता है। इसी में पतली ढकनो से ढका हुआ छिद्र काच की खिड़की का काम देता है।

आँख की विशेष उपयोगिता इसी में है कि इसके प्रबन्ध के लिए कितने ही स्नायु हैं जो इसको समय समय पर मोड़ वा बदल सकते हैं। अन्दर के सीलियरी छल्ले का हाल कह ही चुके हैं। यह समीपावलोकन के लिए काच को दबाकर अधिक उन्नतोदर कर देता है। बाहर की तरफ़ कपाल की हड्डीसे लगे हुए स्नायु हैं; उनमें से चार तो खड़े हैं और डेले को ऊपर नीचे घुमाने का काम देते हैं; और दो अगल बगल में रह कर आँख को तिरछा घुमा सकते हैं। इन से आँख की धुरी बदल सकती है और हम पदार्थों को ध्यानपूर्वक देख सकते हैं। यदि आँख का डेला स्थिर होता तो आँख से बहुत कम ज्ञान मिलता। इस चञ्चलता से पदार्थपरिज्ञान में बड़ा काम निकलता है।

नेत्र द्वारा ज्ञान का मुख्य करण दोनों ओर से उन्नतोदर इस काच को ही गिनना चाहिए; क्योंकि आलोक इसीके द्वारा भीतर जाकर ज्ञानतन्तु सम्बन्धी प्रकम्पन में परिणत होता है। अतएव, यहां पर, ताल काच और उन पर आलोक पड़ने के प्रभाव पर कुछ कहना अनुचित न होगा।

यहां काच वा ताल से "दर्पण" का अभिप्राय नहीं है, किन्तु ऐसे काच के टुकड़े से अभिप्राय है जिसके दोनों किनारे एक दूसरे के समानान्तर न होकर किसी कोण को बनाते हुए झुके हों। सुप्रसिद्ध तिकोने काच में पदार्थों को उठा हुआ देखने के दृष्टान्त और इस चित्र से जान पड़ेगा कि आलोक

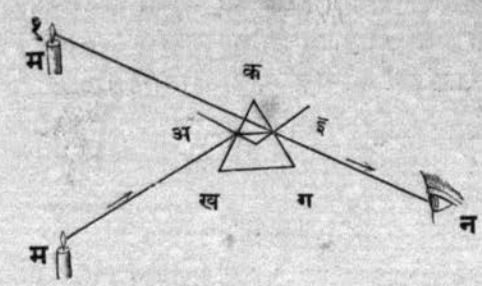

चित्र ३

म, मोमबत्ती. क ख ग ताल, अ इ प्रकाश की किरण के मुड़ने के स्थल 'न' आँख, म१ मोमबत्ती का प्रतिबिम्ब।

की किरणें तरल पदार्थ से अधिक घने पदार्थ में घुसती बेर मुड़ जाती हैं। [क्रमशः।

—•०•—

पुस्तक-परीक्षा।

बिहारी वीर। बाबू गङ्गाप्रसाद गुप्त कृत। दो आने में भारतजीवन प्रेस, काशी, से प्राप्य। यह एक छोटासा जीवनचरित है। ग़दर के समय जगदीशपुर (बिहार) के रहनेवाले बाबू कुँवरसिंह ने बड़ी बहादुरी दिखलाई थी। उन्हींका संक्षिप्त हाल इस पुस्तक में है। कुँवरसिंह गवर्नमेण्ट के बड़े शुभचिन्तक थे। परन्तु गवर्नमेण्ट की कई बातों से चिढ़ कर वे बाग़ी हो गये। बग़ावत की हालत में उन्होंने वीरता के बड़े बड़े काम किये। स्त्रियां तक उनके साथ लड़ाई में कट मरीं। एक दफ़ा किसी अँगरेज़ की गोली उनकी भुजा में, नदी पार करते समय, लगी। इस पर उन्होंने उस भुजाही को काटकर पानी में फेंक दिया। इसी सदमे से उनकी मृत्यु हुई। यह चरित भारतजीवन में, क्रम क्रम, छपता रहा था। वही अब पुस्तकाकार निकला है। पुस्तक पढ़ने लायक़ है।

✽

हम्मीर। बाबू गङ्गाप्रसाद की पुस्तकरचना सर्वप्रिय होती जाती है। आप बड़े तेज़ लेखक हैं। एक के बाद दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी पुस्तक

अध्यापक गोपालकृष्ण गोखले, बी. ए., सी. आई. ई.

निकलती जाती है। आज तक इन्होंने बहुत सी पुस्तकें लिख डालीं हैं। इस समय आप बनारस के "भारतजीवन" के सम्पादक हैं। यह काम भी ये बड़ीही योग्यता से कर रहे हैं। इस साप्ताहिक पत्र का सम्पादन भी ये करते जाते हैं और पुस्तकें भी लिखते जाते हैं। पुस्तक-प्रणयन में ये सहस्रबाहु हो रहे हैं। इनका साहित्यप्रेम, अध्यवसाय और लेखन-कौशल प्रशंसनीय है। "राजस्थान" के आधार पर इन्होंने यह "हम्मीर" नामक उपन्यास लिखा है। इसका बहुत कुछ अंश ऐतिहासिक है। भाषा सरल और रसात्मक है। हम्मीर की देश-हितैषिता, पराक्रम और परोपकार का इसमें अच्छा वर्णन है। असम्भव और ऊटपटांग बातों से भरे हुए उपन्यासों की अपेक्षा ऐसे उपन्यासों का पढ़ना अच्छा है। दाम इस पुस्तक का तीन आना है।

❀

संस्कृत कविपञ्चक। मराठी के प्रसिद्ध लेखक विष्णुशास्त्री चिपलूनकर के नाम से हिन्दी के जाननेवाले भी, पण्डित गङ्गाप्रसाद अग्निहोत्री की बदौलत, परिचित हो गये हैं। शास्त्रीजी मराठी के विख्यात लेखक थे; संस्कृत और अङ्गरेज़ी के अच्छे ज्ञाता थे; देशहितैषिता और स्वातन्त्र्य के बहुत बड़े अनुरागी थे; और संस्कृत के प्राचीन काव्यों के पूरे मर्म्मज्ञ थे। उनके लिखे हुए मराठी के कई निबन्धों का हिन्दी अनुवाद अग्निहोत्रीजी ने "निबन्धमालादर्श" के नाम से, कुछ समय हुआ, प्रकाशित किया था। कविपञ्चक भी शास्त्री जीही के पांच मराठी निबन्धों का अनुवाद है। ये निबन्ध कालिदास, भवभूति, सुबन्धु, बाण और दण्डी के विषय में हैं। संस्कृत में यही पांच कवि बहुधा प्रधान माने जाते हैं। उनके समय, जीवन और काव्य आदि की इसमें अच्छी समालोचना है। इस तरफ़ संस्कृत का बहुत कम प्रचार है। इसलिए संस्कृत न जाननेवालों के लिए भारतवर्ष के इन प्रसिद्ध कवियों के विषय में ज्ञान प्राप्त करने का मार्ग अग्निहोत्री जी ने बहुत सुलभ कर दिया। प्रत्येक कवि के सम्बन्ध में बहुत अच्छा विवेचन इस पुस्तक में है। उनके काव्यों के अच्छे अच्छे नमूने भी हैं। पुस्तक मोटे और चिकने काग़ज़ पर, श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, बंबई में, छपी है। सुन्दर जिल्द बंधी हुई है। २५२ पृष्ठ की पुस्तक होने पर भी दाम सिर्फ़ ॥।) है। इसे जयपुर निवासी हिन्दी-रसिक जैन वैद्य जी ने प्रकाशित किया है। उन्हीं के यहां से यह मिलती है। वैद्य जी का उत्साह प्रशंसनीय है। इस पुस्तक के दो निबन्ध मुंशी नवलकिशोर के प्रेस में छपे थे। परन्तु दो से अधिक, उस प्रेस के मालिक, नहीं छाप सके। जिस काम को इतना बड़ा प्रेस नहीं कर सका, उसे जैन वैद्य जी ने करके अपने साहित्यानुराग का अच्छा परिचय दिया। इस पुस्तक की भाषा, कहीं कहीं पर, कुछ क्लिष्ट हो गई है। संस्कृत के जो श्लोक नमूने के तौर पर दिये गये हैं उनमें से किसी किसी का यदि अनुवाद भी लिख दिया जाता तो उत्तम होता।

❀

कन्याबोधिनी। इस पुस्तक के चार भाग हैं। प्रत्येक भाग की क़ीमत क्रम से १, २, ३ और ४ आने हैं। पुस्तक सचित्र हैं; ख़ूब मोटे और चिकने काग़ज़ पर छपी है। महाराजा सेंधिया की कन्या-पाठशालाओं में पढ़ाई जाती है। कन्याधर्म्मवर्द्धिनी सभा ग्वालियर के उपदेशक पण्डित केदारनाथ चतुर्वेदी ने इसे बनाया है। इस परिश्रम के उपलक्ष्य में आपको पुरस्कार भी मिला है। पुस्तक अच्छी है। इसके पाठ लड़कियों के योग्य हैं। अच्छा हो जो दूसरी जगह के लड़कियों के मदर्सों में भी यह पुस्तक जारी हो जाय। ऐसी पुस्तकों की, इस समय, बड़ी आवश्यकता है।

❀

स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा-उत्तरार्द्ध। जैनग्रन्थरत्नाकर नाम की जो पुस्तक-मालिका बम्बई से निकलती है उसीमें यह पुस्तक प्रकाशित हुई है। मूल्य १॥) यह अनुप्रेक्षा जैनियों का प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसकी

रचना प्राकृत में है; परन्तु जयपुर के पण्डित जयचन्द्र जी ने इसको छाया संस्कृत में कर दी है और साथही पण्डिताऊ हिन्दी में अर्थ भी लिख दिया है। पुस्तक जैनियों के काम की है।

✲

विघ्न-दर्शन। इसका दूसरा नाम है "राक्षसीमाया का परिचय"। "टाइटिल पेज" इस पर नहीं है। इसके कर्ता बरेली-निवासी खुन्नीलाल शास्त्री हैं। इसमें "सूत्र" हैं। जैसे संस्कृत की प्राचीन पुस्तकों में सूत्र हैं वैसे ही इसमें भी हैं। उनका भाष्य भी है। वह भी हिन्दी में है। नग्न रहनेवाले, भूत, प्रेत इत्यादि सिद्ध करने का यत्न करनेवाले, तथा अघोर-पन्थी मत के अनुयायियों के प्रतिकूल बहुत सी बातें इसमें शास्त्री जी ने लिखी हैं।

✲

संस्कृतवाक्यप्रबोधः। पण्डित बदरीदत्त शर्म्मा कृत। स्वामीप्रेस, मेरठ, से प्राप्य। दाम ≡) मात्र। हम लोगों को संस्कृत सीखने की बड़ी आवश्यकता है। परन्तु सारस्वत और कौमुदी के सूत्र घोखने से लोग डरते हैं। है भी वह ज़रा कष्टसाध्य काम। लड़कपन ही में वैसा परिश्रम हो सकता है। जो लोग थोड़े परिश्रम से संस्कृत में प्रवेश करना चाहें उनके लिए संस्कृत-वाक्य-प्रबोध बड़े काम की चीज़ है। पण्डित बदरीदत इस पुस्तक को चार भागों में बाँट कर संस्कृत-व्याकरण का पढ़ना सुलभ कर देना चाहते हैं। यह इस पुस्तक का पहला भाग है। इसमें वर्णोपदेश, वर्णोच्चारणस्थान, सन्धि-प्रकरण, शब्दानुशासन और कारक इतने विषय हैं। वे सब हिन्दी में ख़ूब अच्छी तरह समझाये गये हैं। पुस्तक उत्तम है। अच्छा हो यदि पण्डित जी शेष तीनों भागों को भी झटपट छपा डालें।

✲

रहस्यप्रकाश। यह एक छोटा सा नाटक है। पण्डित बदरीदास ने इसे लिखा है और प्रयाग के इण्डियन प्रेस में छपवाया है। छपाई और काग़ज़ बहुत अच्छे हैं। दाम ॥) है। मुक़दमेबाज़ों का इसमें अच्छा चित्र है। जाल और फ़रेब से भरे हुए कैसे कैसे अभियोग कचहरियों में आते हैं इसका इसमें प्रदर्शन है। यह रूपक खेलने लायक़ है।

मनोरञ्जक श्लोक।

अनामा स्वर्णमाधत्ते न कनिष्ठा न मध्यमा।
निजनामप्रसिद्धानां भूषणैः किं प्रयोजनम्?

अनामा ही सोने की अँगूठी पहनती है; न कनिष्ठा ही पहनती है और न मध्यमाही। क्योंकि जिसका नाम नहीं है; अर्थात् जिसका नाम कोई नहीं जानता, उसीको आभूषण पहनकर अपनी प्रसिद्धि करने की ज़रूरत पड़ती है। जो अपने नामही से प्रसिद्ध हो रहा है, अर्थात् जिसका नाम सब कोई जानते हैं, उसको आभूषणों से क्या मतलब? नाम-मात्र से प्रसिद्ध होनेवालों के लिए "एशियाटिक सोसायटी के मेम्बर," या अमुक कालेज के अध्या-पक, या अमुक सभा के मन्त्री, या अमुक अख़बार के एडिटर, इत्यादि लिखने की ज़रूरत नहीं।

* * *

अनलस्तम्भनविद्यां सुभग भवान् नियतमेव जानाति।
मन्मथशराग्नितप्ते हृदये मे कथमन्यथा वससि॥

हे सुभग, (जङ्गम बाबा के चेलों के समान) आप आग के स्तम्भन (ठण्डा) करने की विद्या को ज़रूर जानते हैं। यदि न जानते होते तो मन्मथ के बाणों की आग से धधकते हुए मेरे हृदय में आप किस तरह रह सकते?

Dr. G. A. GRIERSON, C.I.E., Ph.D., D.Litt.

श्री तुलसी के काव्य प्रेम सों बाँचन वारे,
सूर, बिहारी, लाल, जायसी मानन हारे ;
विद्या-कीरति-धाम, बड़े ये भाषा-पंडित,
जि० ए० ग्रियर्सन नाम, गुणागर ऋजुता-मंडित ॥

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग ६] फ़ेब्रुअरी, १६०५ [संख्या २

विविध विषय।

गत दिसम्बर के अन्त में, काशी में, थिआसफ़िकल समाज का सालाना जलसा हुआ। दूर दूर से, दूसरे दूसरे देशों तक के, लोग इसमें शामिल होने आये थे। यह समाज सब जातिवालें को अपना सभासद बनाता है और सब धर्म्मों की अच्छी अच्छी बातों पर अमल करने की घोषणा देता है। काशी का हिन्दू कालेज इसी सम्प्रदाय के मुखिया महात्माओं के परिश्रम का फल है। इस समाज के अधिष्ठाता कर्नल आल्काट हैं। यह बहुत बूढ़े हैं। पर इनके जीवन-चरित का लोगों को कम ज्ञान है। इनकी सहकारिणी एक लेडी महाशया थीं। वे अब इस लोक में नहीं हैं। उनका नाम था मैडम ब्लावेट्स्की। वे रूस की रहनेवाली थीं। सुनते हैं, उनका विवाह एक जरठ से हुआ था। वह कुछ काल में, विवाह के बाद, हमेशा के लिए यहां से चलता हुआ। रूस के अधिकारियों को, इस घटना पर, कुछ सन्देह हुआ। इसलिए मैडम साहबा ने रूस छोड़ दिया। वे इधर उधर घूमती हुई तिबत पहुँचीं। वहां हिमालय पर उनको कई पहुँचे हुए साधु मिले। उनसे उन्होंने बहुत सी अलैाकिक शक्तियां प्राप्त कीं। वहां से, इस प्रकार, सिद्धि प्राप्त करके उन्होंने, कर्नल आल्काट की सहायता से, थिआसफ़िकल समाज की नींव डाली। इस समाज ने अब ख़ूब ज़ोर पकड़ा है। इस समय इसकी ८५० शाखायें, भिन्न भिन्न देशों में, हैं। कोई २९,००० विद्यार्थी इसके खोले हुए स्कूलों में पढ़ते हैं। श्रीमती बेसण्ट भी अब इसी समाज में हैं। दिसम्बर के जलसे में बनारसी सारी पहने हुए, इन्होंने एक बहुत ही हृदयहारिणी वक्तृता देकर, सुननेवालें को लुभाया था। सुनते हैं ये मद्य-मांस नहीं छूतीं और हिन्दुस्तानी साध्वी स्त्रियों की तरह बड़ी पवित्रता से अपना जीवन निर्वाह करती हैं। हिन्दू कालेज से अङ्गरेज़ी में जो एक पत्रिका निकलती है उसको अब यही लिखती हैं। कुमारी यडगर, एम० ए०, भी इस समाज की एक प्रसिद्ध मेम्बर हैं। ये पहले आस्ट्रेलिया या न्यूंज़िलैण्ड में कहीं, किसी

कालेज में, अध्यापिका थीं। अब यह भी इस समाज की उन्नति के काम में लगी हैं; और अपने मनोहर व्याख्यानों से लोगों के मोहित किया करती हैं।

***

पण्डित गिरिजाप्रसाद द्विवेदी ने वराह-मिहिर पर एक लेख लिखा। वह लेख एप्रिल, १९०४, की सरस्वती में छपा। उसके अन्त में "आसन् मघासु मुनयः" इत्यादि वराह-मिहिर के श्लोक से यह अनुमान किया गया है कि कलि के ६५७३ वर्ष पहले कुरुक्षेत्र में युद्ध हुआ था, अर्थात् महाभारत हुए ११००० वर्ष हुए। नवम्बर १९०४ की संख्या में चिट्टूरनिवासी वी० गोपाल आइयर का मत हमने प्रकाशित किया है। उसके अनुसार युधिष्ठिर को हुए सिर्फ़ ३००० वर्ष हुए। अब, इस संख्या में, इसी विषय पर हम पण्डित गणपति जानकीराम दुबे का एक छोटासा लेख अन्यत्र प्रकाशित करते हैं।

***

पण्डित गणपति जानकीराम ने गोपाल आइयर के मत को प्रामादिक बतलाया है। परन्तु आपको चाहिए था कि गोपालराव के दिये हुए प्रमाण को आप युक्ति से खण्डन करते और वराह-मिहिर के श्लोक की सङ्गति भी लगाते। ऐसा करने से आप के लेख का अधिक गौरव होता। किसीकी बात को भ्रमपूर्ण बतला कर उसकी युक्तियों का खण्डन भी करना चाहिए।

***

इवल्ली कहां है? वहां के जैनमन्दिर को किसने बनवाया? शिलालेख किन अक्षरों में है? उस लेख में और क्या क्या बातें हैं? प्रथम शङ्कराचार्य कब हुए? उनके समय का क्या प्रमाण है? किस किस पुरातत्ववेत्ता ने इस लेख को पढ़ा और इसके शक-सम्वत् को ठीक बतलाया? अध्यापक केरो लक्ष्मण गणित में सचमुच अद्वितीय थे। पर क्या वे पुरातत्व के भी पण्डित थे? शिलालेख के श्लोक से तो कलि के ८५५ वर्ष पहले मन्दिर का बनना सूचित होता है; फिर कलि की बाईसवीं शताब्दी में उसका बनना किस तरह सिद्ध हुआ? अच्छा, मान लीजिए कि कलि के २१७५ वर्ष पहले महाभारत हुआ और कलि की २२वीं शताब्दी में यह मन्दिर बना। अतएव मन्दिर बनने के समय महाभारत हुए कोई पांच हज़ार वर्ष हुए थे। क्या प्रमाण है कि पांच हज़ार वर्ष की पुरानी बात शिलालेख में ठीक ठीक दी गई है?

***

अपनी आरकियालाजिकल रिपोर्ट के पहले भाग में जनरल कनिंहाम अनुमान करते हैं कि ईसा के १४२४-२५ वर्ष पहले युधिष्ठिर ने इन्द्रप्रस्थ को अपनी राजधानी बनाया था। बेण्टले साहब का हवाला देकर वे लिखते हैं कि जिन ग्रहों का ज़िकर महाभारत में है वे इसी वर्ष अपने उल्लिखित स्थान में थे। विष्णुपुराण में लिखा है कि परीक्षित के जन्म के समय सप्तर्षि मघा पर थे और नन्द के समय में वे पूर्वाषाढ़ पर होंगे। सप्तर्षि एक नक्षत्र पर १०० वर्ष तक रहते हैं। इस प्रकार परीक्षित और नन्द के बीच में १००० वर्ष का समय हुआ। परन्तु भागवत के अनुसार यह समय १०१५ का है। इसमें ९ नन्दों के राज्यकाल के १०० वर्ष मिला देने से १११५ होते हैं। चन्द्रगुप्त ईसा के ३१५ वर्ष पहले हुआ। अतएव १११५ + ३१५ = १४३० वर्ष ईसा के पहले परीक्षित का जन्म हुआ। अर्थात् महाभारत और परीक्षित के जन्म में पाँच वर्ष का अन्तर हुआ। इस हिसाब से महाभारत को हुए कोई सवा तीन हज़ार वर्ष हुए। परन्तु हमने भागवत और विष्णुपुराण में उल्लिखित श्लोकों को ढूंढ़ कर उन्हें स्वयं नहीं देखा। कनिंहाम साहब ने जो कुछ लिखा है वही हमने यहां पर लिख दिया है।

***

कलकत्ता हाईकोर्ट के न्यायमूर्ति शारदाचरण मित्र, एम० ए, बी० एल०, चाहते हैं कि इस देश में जितनी भाषायें हैं सब एकही प्रकार की लिपि में लिखी जायं। यह लिपि संस्कृत की वर्णमाला की भित्ति पर होनी चाहिए—अर्थात् देवनागरी अक्षरों में सब प्रान्तिक भाषायें लिखी

जानी चाहिए। उन्होंने इस विषय में गत दिसम्बर महीने में एक लेख पढ़ा था। यह लेख यूनीवर्सिटी इन्स्टीटयूट में पढ़ा गया था। सर गुरुदास बैनर्जी उस समय सभापति थे। अपने प्रस्ताव के समर्थन में न्यायमूर्ति शारदाचरण ने प्रायः वही बातें कहीं जो हम अपने "देशव्यापक भाषा" सम्बन्धी लेख में कहचुके हैं। लक्षण अच्छे हैं। जैसा हमने कहा है, इस मामले में, जब तक बङ्गवासी अगुआ न होंगे तब तक सफलता की कम आशा है।

* * *

कलकत्ते में एक हिन्दी-साहित्य-सभा स्थापित हुई है। उसका उद्देश्य हिन्दी भाषा और हिन्दी-साहित्य की उन्नति करना है। हम इस सभा के मङ्गलाकांक्षी हैं। यह सभा हिन्दी का एक व्याकरण बनाने की चेष्टा कर रही है। सभा चाहती है कि जो महाशय इस काम में उसकी सहायता देना चाहें वे उससे पत्र-व्यवहार करें। यदि किसी ने व्याकरण लिखने का काम आरम्भ किया हो तो वह भी उसकी सूचना, कृपाकरके, सभा के मन्त्री को, ७६ नं०, तूलापट्टी, कलकत्ता, के पते पर दे।

* * *

समालोचक कहते किसे हैं? जो समालोचना के नियमों को अच्छी तरह जानता हो; और, समालोचना करते समय, अपनी युक्तियों को पुष्ट करने ही के लिए जो समालोच्य वस्तु में से उदाहरण उद्धृत करता हो; वही सच्चा समालोचक है। जिनमें यह गुण नहीं उनकी समालोचना पढ़ते समय आनन्द नहीं मिलता और समय व्यर्थ जाता है, क्योंकि पढ़नेवाले सभी समालोच्य वस्तुओं से परिचित नहीं होते। और बिना परिचय के किसी वस्तु की साधारण निन्दा अथवा प्रशंसा का असर चित्त पर नहीं होता। समालोचक के लिए दो बातें बहुत ज़रूरी हैं। एक तो वह अपने और ग्रन्थकार के हृदय का एकीकरण कर सके; अर्थात् ग्रन्थकार के मतलब को वह उसी तरह समझ ले जिस तरह कि स्वयं ग्रन्थकार ने अपने शब्दों द्वारा उसे दूसरों को समझाना चाहा है। दूसरे यह कि समालोच्य ग्रन्थ की समता वह किसी दूसरे ग्रन्थ से करके दोनों का तारतम्य बतला सके। उसे साहित्य का उत्तम ज्ञाता होना चाहिए और साहित्य के गुण दोषों के विवेचन की शक्ति भी उसमें होनी चाहिए। जो समालोचक सिर्फ़ यह कह कर चुप हो जाता है कि यह पुस्तक बुरी है और यह भली है, वह समालोचक कहलाने योग्य नहीं। यह एक अङ्गरेज़ समालोचक का मत है।

* * *

अक्टोबर १९०४ की सरस्वती में सुखदेवमिश्र का चरित प्रकाशित हुआ है। उसमें हमने शिवसिंह के आधार पर सुखदेवजी-कृत अध्यात्मप्रकाश नामक पुस्तक का उल्लेख किया है। इस पुस्तक को मध्य प्रदेश में, रायगढ़ से २४ मील पर, पारसापाली के रहनेवाले पण्डित मेदिनीप्रसाद ने हमारे पास भेजा है। आपके पास और भी कई हस्तलिखित अच्छी अच्छी पुस्तकें हैं। सम्वत् १९३५ ईसवी में काशी से ४ संन्यासी पारसापाली पहुँचे थे। वहां उन्होंने अध्यात्मप्रकाश की पुस्तक पण्डित मेदिनीप्रसाद के पिता को दी थी। यह पुस्तक सम्वत् १८२३ की लिखी हुई है। इसे स्वामी गिरिजानन्द ने काशी में लिखा था। इससे यह अनुमान होता है कि सम्वत् १८२३ में सुखदेवजी को परलोक गये थोड़ा ही समय हुआ था। सम्भव है कि वे काशी गये हों और वहां पूर्वोक्त स्वामी ने इसकी नक़ल कर ली हो। इससे हमारा यह सिद्धान्त और भी दृढ़ होता है कि सुखदेवजी को हुए १५० वर्ष से अधिक नहीं हुए। अध्यात्मप्रकाश एक छोटी सी पुस्तक है। उसमें गुरु-शिष्य-सम्वाद द्वारा थोड़े में वेदान्त का वर्णन है। परन्तु कविता बहुत अच्छी है; और सुखदेवजी की कविता से मिलती भी है। इससे यह अवश्य ही दौलतपुर-निवासी सुखदेव जी की बनाई होगी। परन्तु बनाने का कारण और समय इसमें नहीं लिखा। इसकी कविता का एक उदाहरण सुनिए—